♦ षष्ठ अध्याय ♦

प्रबन्धन वैदिक दृष्टिकोण

विषयावतरण

- नैतिकता
- सामाजिक समृद्धि
- वर्तमान एवं भविष्य दृष्टि

♦ षष्ठ अध्याय ♦

प्रबन्धन वैदिक दृष्टिकोण

नैतिकता

वैदिक वाङ्मय सर्वत्र नीतियुक्त शिक्षा ही प्रदान करता है। इस संसार में रहने वाला प्रत्येक जीव सदैव सुख की ही अभिलाषा करता है। सुख प्राप्त करने के लिए ही सारी भौतिक सुविधाओं को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वर्तमान युग में व्यक्ति सरस्वती की आराधना भी लक्ष्मी प्राप्ति के लिए ही करता है। अपनी स्वार्थपरायणता के चलते मनुष्य अनैतिकता के गर्त में पहुँच रहा है। स्वार्थसिद्धि के लिए व्यक्ति सत्य–असत्य, सही–गलत, ग्राह्य–त्याज्य सभी भेदों को भूल चुका है। आज मनुष्य के लिए सही वही है जो उसे सुख दे। वैदिक वाङ्मय का अवतरण धरती पर पथ भ्रष्ट मनुष्य को सन्मार्ग पर लाने के लिए ही हुआ है। पुरूषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति ही वैदिक वाङ्मय की सर्वप्रथम शिक्षा है।

वर्तमान मनुष्य दुःख को अपने निकट देखना नहीं चाहता है किन्तु वह यह कभी नहीं विचारता कि वह कितने लोगों को अपने अनैतिक आचरण द्वारा दुःख पहुँचा रहा है।

नैतिकता–अनैतिकता

नैतिकता के विषय में वेदोक्त प्रबन्धन एवम् समष्टिगत प्रबन्धन में नैतिक आचरण आदि विषयों पर चर्चा के पूर्व यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि नैतिकता क्या है?

''नैतिक'' शब्द का शाब्दिक अर्थ है नियमपूर्वक अथवा नीतियुक्त, अर्थात् वह आचरण जो नीतियुक्त हो, नियमबद्ध हो वही ''नैतिकता'' कहलाता है। समस्त मानव जाति के हित, सभी की प्रगति, सभी के सुख के विषय में विचार करके उसी उद्देश्य को केन्द्र में रख कर आचरण करना ही नैतिकता है। नैतिक आचरण ही किसी सभ्यता की प्रगति का द्योतक है। किसी भी राष्ट्र अथवा

समाज के अपने पृथक नीति निर्देशक तत्व होते हैं, जिनका पालन करना उस राष्ट्र के नागरिकों का परम कर्त्तव्य होता है, किन्तु नैतिक आचरण ऐसा सद्गुण है जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने आचरण में अपने व्यक्तित्व में विकसित करना होता है। हम अगर इतिहास की ओर पुनः दृष्टिपात करें तो पाते है कि प्रत्येक महान् व्यक्ति जो अपने जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करते हैं वे निश्चित ही मानवीय मूल्यों की, नैतिकता की अनदेखी नहीं करते अर्थात् सौम्यता, सादगी से भरी जीवन शैली, परिष्कृत विचारधारा, निःस्वार्थ चिन्तन तथा गरिमापूर्ण चरित्रयुक्त व्यक्ति ही सफलता को प्राप्त करता है तथा सम्पूर्ण मानव जाति के लिए आदर्श मार्ग का निर्माण करता है। गीता में भी कहा गया है कि श्रेष्ठ पुरूष जिस प्रकार का आचरण करते हैं, वे जो भी प्रमाण देते हैं, जन समुदाय भी उसी का अनुसरण करने लगता है–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।।[270]

सुप्रबन्धित रूप से व्यवस्थित जीवन निर्वाह करने के साथ ही हमें जीवन में उच्च शिखर प्राप्त करने के लिए सर्वस्व नैतिकतापूर्ण आचरण व मानवता के लिए न्यौछावर करने की भावना ही सफलता अर्जित करा सकती है, अर्थात् नैतिकता के अन्तर्गत वे समस्त तत्व सम्मिलित हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व, समाज, राष्ट्र व सम्पूर्ण विश्व के चहुँदिश विकास में सहायक होते हैं।

वास्तविक रूप से भारतीय प्राचीन प्रबन्धन के अनुसार ईश्वर ने हमें मानवजीवन प्रदान किया है, जो समस्त योनियों में श्रेष्ठ माना जाता है। मनुष्य में इतनी बुद्धि व शक्ति होती है कि यदि वह अपनी ऊर्जा सकारात्मक कार्यों की ओर प्रेरित करें तो इस पतनोन्मुख विश्व का स्वरूप ही परिवर्तित हो जाय। वैदिक वाङ्मय में सम्पूर्ण मानव जाति के उद्धार के लिए अनेक दिशा निर्देश प्रकाशित हैं। इनके अनुसार मनुष्य परमपिता परमेश्वर की सर्वोत्तम कृति है तथा मनुष्य का भी कर्त्तव्य है कि वह

---

[270] श्रीमद्भगवत् गीता, 3.21

अपनी ओर से मानवसेवा का हर सम्भव प्रयास करे। ईश्वर के प्रति धन्यवाद प्रेषित करने का यही सर्वश्रेष्ठ वेदोक्त मार्ग है। वेदों के अनुसार **''परार्थ''** जीवन ही अन्तःकरण की दूषित भावनाओं को शुद्ध कर सकता है।

नैतिकता के मार्ग का अनुसरण करने के लिए सर्वप्रथम उन अनैतिक कार्यों के विषय में भी जान लेना आवश्यक है जो हमारे समाज एवं सम्पूर्ण विश्व के वातावरण को दूषित कर रहे हैं जैसे–धन लोलुपता; उचित अनुचित मार्ग द्वारा और भी अधिक भौतिक सुख पा लेने की लालसा; मर्यादाओं का उल्लंघन; अपने कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्वों की उपेक्षा करना; वासनापूर्ण आचरण करना; स्वार्थपरकता इत्यादि सभी कार्य अनैतिक कार्यों की श्रेणी में आते हैं।

वैदिक वाङ्मय में वर्णित है कि हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। वेदों का प्रत्येक वाक्य, अक्षरशः सत्य है। वेदोक्त मार्ग का अनुसरण कर उनके प्रति पूर्ण श्रद्धा रखकर ही मनुष्य न केवल स्वयं के जीवन को सार्थक कर सकता है अपितु समस्त मानवजाति के कल्याण के विषय में चिन्तन कर सकता है। ईश्वर में एकात्म स्थापित कर उस अनंत शक्ति के प्रति समर्पण भाव रखकर अपनी अभिलाषाओं को शुद्ध कर लिया जाए तो सद्कार्यों से हमें कोई विमुख नहीं कर सकता है–

मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत।

इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरूक्था च शंसत।।[271]

अर्थात् हितकारी, उपासकों सब एकाग्र होकर प्रसन्न होने पर अभीष्ट को पूर्ण करने वाले परमेश्वर की ही स्तुति करो, कीर्तन करो। परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की भी उपासना न करो, आत्मश्रेय का नाश न करो।

---

[271] ऋक. 8–1–1

ईश्वर भक्ति में स्वयं को लीन कर सांसारिक कार्यों का निर्वहन कर सद्कार्यों को सम्पादित करना ही मनुष्य मात्र की नैतिकता की ओर प्रवृत्त कर सकता है। मानव जीवन मात्र स्वार्थ पूर्ति के लिए नहीं है अपितु अपने माता–पिता, मूक प्राणियों, गुरूजनों, अपने सम्बन्धियों, अपने समाज, अपने राष्ट्र, प्रकृति तथा सम्पूर्ण विश्व के प्रति अपने नैतिक कर्त्तव्यों का निस्वार्थ निर्वहन करने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता होती है।

प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक प्रबन्धन का मूलाधार त्याग व तपस्या ही है और वेदों में सर्वत्र यही प्रार्थना की गई है कि मनुष्य के चित्त में सदैव पवित्र उर्वर एवम् स्वार्थ रहित विचारों का निर्मल प्रवाह प्रवाहित होता रहे। हम अपनी बुद्धि को सदैव सद्मार्ग की ओर प्रेरित करते रहें। मनुष्य जब अमर्यादित व अनैतिक आचरण करने लगता है तब वह पशु के समतुल्य हो जाता है। वेदों में दुष्प्रवृत्तियों की तुलना विभिन्न पशु–पक्षियों के पशुवत गुणों से कर हमें शिक्षा दी गई है उन दुर्गुणों को पहचानने व उनसे दूर रखने की–

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहिश्वयांतुमुत को कयातुम्।

सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।।[272]

अर्थात् हे मनुष्य! उलूक की वृत्ति प्रकाश से दूर अंधकार प्रियता है, यह दुर्गुण मनुष्य में संशय वृत्ति के रूप में विद्यमान होता है, जिस प्रकार क्रोधी व क्रूर भेड़िये की वृत्ति आक्रामक होती है, जिस प्रकार एक श्वान प्रायः सभी पर गुर्राकर लपकता है, जिस प्रकार एक चकवा–चकवी की वृत्ति वासनापूर्ण व असामाजिक वृत्ति होती है, जिस प्रकार ऊँचाई की ओर उड़ने वाले गरूड़ में अभिमान प्रवृत्ति होती है, जिस प्रकार एक गिद्ध दूसरों की सम्पत्ति पर दृष्टि रखने तथा उसे छीन लेने की लोलुप वृत्ति के लिए प्रसिद्ध होता है। मनुष्य मात्र अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में कर

[272] अथर्व 8.4.22, ऋक 7.104.22

मोह, क्रोध, मत्सर, काम, मद, लोभ जैसी दुष्प्रवृत्तियों को अपना शत्रु जान कर स्वयं से दूर करने का प्रयत्न करने पर ही आत्मोत्थान के नैतिक मार्ग पर प्रस्थान कर सकता है।

नैतिकता का आचरण करने वाले मनुष्य के निकट स्वार्थपरायणता व वासना कभी नही आ सकती। अनैतिक विधि द्वारा एकत्र धन को भी वेदों द्वारा त्याज्य माना गया है। वह धन संपदा जो दोषपूर्ण हो, किसी को दुःख पहुँचा कर अर्जित की गई हो मनुष्य को पतन की ओर अग्रसर करती है। वहीं दूसरी ओर जो धन, नीतियुक्त, धर्म व परिश्रम से अर्जित हो वह पुण्य फलदायी होता है। इस प्रकार अर्जित लक्ष्मी को 'मुद्रा' लक्ष्मी की संज्ञा हमारें वेदों में दी गई है–

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभि चसकन्द वन्दनेव वृक्षम।

अन्यत्रास्मत्सवित स्तानितो धा हिरण्यहस्तो नो रराणः।।[273]

अर्थात् जिस प्रकार वन्दना नामक लता हरे–भरे वृक्ष का शोषण करती है ठीक उसी प्रकार अनैतिक व भ्रष्ट मार्ग द्वारा अर्जित लक्ष्मी दुर्गतिकारिणी है तथा वह भी मनुष्य के चित्त की शान्ति व आनंद का शोषण कर लेती है। अतः हे सविता देव! ऐसी दोषपूर्ण लक्ष्मी को मेरे समीप न आने दें उसे अन्यत्र ही रखें। हे ईश्वर आप मुझे ऐसा धन प्रदान करें जो धर्म नीति व परिश्रम द्वारा अर्जित हो।

वैदिक आर्य इतने सच्चरित्र तथा ज्ञानी थे कि नैतिक व अनैतिक विधि द्वारा अर्जित लक्ष्मी में भेद वे भलीभाँति जानते थे जिसे वर्तमान मनुष्य जान कर भी जानना नहीं चाहता। वे आत्मनियन्त्रण व स्वविवेक से ऐसी लक्ष्मी की कामना कदापि नहीं करते थे जो पापमयी हो, वे तो पवित्र पुण्यमयी लक्ष्मी की ही अभिलाषा सदैव करते थे।

वर्तमान युग में सभी अनैतिक कार्यों के परोक्ष में धन ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण है। आज मनुष्य सारे भौतिक सुखों की अभिलाषा रखता है तथा उनकी पूर्ति के लिए आवश्यक धन अर्जित

---

[273] अथर्व 7.15–2

करने में कोई भी मार्ग अपनाने से नहीं चूकता। वैदिक शिक्षाओं व परम्पराओं की आज महती आवश्यकता है। वैदिक आर्य भी धन की अभिलाषा करते थे। उनका भौतिक जीवन भी उच्च कोटि का था किन्तु ईश्वर के प्रति पूर्ण श्रद्धा व सत्य निष्ठा के साथ वे पुण्यमयी लक्ष्मी की ही अभिलाषा करते थे। इतना ही नहीं अर्जित धन के सदुपयोग के विषय में भी वेदों में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। दान परम्परा भी इसी का एक अंग है।

भारतीय शास्त्रों में कर्मफल का स्पष्ट वर्णन है। यदि हम सत्कर्म सदाचार का मार्ग अपनाते हैं, नैतिकतायुक्त जीवन–यापन करते हैं तो हमें उसका प्रतिफल कभी न कभी अवश्य प्राप्त होता है।दुष्कर्मों का प्रतिफल अगर वह अपने प्रारब्ध जन्मों के प्रभाव से न भोग सके तो उसकी संतति को यह भोगना पड़ता है–

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु।

न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः।।[274]

अर्थात् यदि मनुष्य वेदोक्त मार्ग का अनुसरण नहीं करता है, अनैतिक आचरण करता है, ईश्वर में श्रद्धा नहीं रखता है तो उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। पुनः यदि उसका फल उसे नहीं मिले तो उसके पुत्र को मिलता है, यदि पुत्र को भी नहीं प्राप्त हो तो पौत्रों को अवश्य प्राप्त होता है। अर्थात् पापकर्म का फल कभी निष्फल नहीं जाता।

अतः वे व्यक्ति जो अपने संतति से स्नेह रखते हो, उन्हें सुखी व समृद्ध देखना चाहते हो, उनकी उन्नति चाहते हो तो उन्हें कभी असत्य व अधार्मिक आचरण नहीं करना चाहिये।

वैदिक वाङ्मय में यत्र–तत्र अपने आन्तरिक शत्रुओं का विनाश कर उन्नति की प्रेरणा प्रदान की गई है। लोभ–मोह, अहंकार, क्रोध इत्यादि आन्तरिक शत्रु मनुष्य को नैतिकता से पथभ्रष्ट कर मनुष्य को मात्र क्षणिक सुख प्रदान करते हैं। परम पुरूष परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य है तथा

---

[274] मनुस्मृति 4.173

वह इतनी अपरिमित शक्तियों से परिपूर्ण है,जो किसी अन्य ईश्वरीय कृति में एक साथ प्राप्त नहीं हो सकती किन्तु मनुष्य भौतिक सुख की मृगतृष्णा में भटक कर ईश्वर द्वारा प्रदत्त अतुलित सम्पदा व्यर्थ कर देता है तथा सदैव असन्तुष्ट ही रहता है।

आज के युग में मनुष्य दूसरों का पतन करके भी प्रगति करने से नहीं हिचकता। क्या यही प्रगति है? पतनोन्मुखी विश्व संस्कृति के लिए भी यही तथ्य उत्तरदायी है, यही **अनैतिकता** है। परमपिता ने हमें मनुष्य जन्म प्रदान किया है तो उसका सदुपयोग करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है।

किसी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र के द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करना प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य है, किन्तु नैतिक नियमों का निर्धारण व पालन करना मनुष्य के स्वविवेक के आधार पर ही सम्भव है। उचित, अनुचित ग्राह्य त्याज्य, सत्य–असत्य, नीति–अनीति, धर्म–अधर्म इत्यादि विषयों का निर्णय विवेकशीलता के आधार पर ही लिया जा सकता है। सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए निःस्वार्थ भावना अपनी अन्तरात्मा की पुकार सुनकर यदि प्रत्येक व्यक्ति नैतिक आचरण करे तो इसी में सम्पूर्ण विश्व का कल्याण निहित है।

वैदिक वाङ्मय के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति नैतिक आचरण करे तो इसी में सम्पूर्ण विश्व का कल्याण निहित है। वैदिक वाङ्मय में प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह राजा हो अथवा साधारण मनुष्य सभी के नैतिक कर्त्तव्यों का वर्णन है। राजा को भी अपने पद की गरिमा बनाए रखते हुए नैतिक आचरण के निर्देश दिये गए हैं। यदि राजा भी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा से उन्मत्त होकर, अहंकारी, दुराचारी व अनैतिक पथ का अनुसरण करता है तो उसका पतन भी अवश्य ही होता है।

वर्तमान समय में लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली के होते हुए भी जो व्यक्ति राष्ट्र में उच्च पदों पर आसीन हो जाते हैं वे अपने कर्त्तव्यों से विमुख होकर मात्र अपने ही विषय में चिन्तन करने लगते

हैं, ऐसे शासकों के लिए यह जानना आवश्यक है कि अपने राष्ट्र व उसके नागरिकों की उन्नति अथवा पतन में ही राजा का हित संयुक्त होता है।

राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः।

दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथाः।।[275]

एक राजा को सदैव प्रजाजनों की भलाई के विषय में सोचना चाहिये, अपने बन्धुओं की अपेक्षाओं को पूर्ण करना, वासना वृत्ति की ओर चित्त आकर्षित न करना, अन्तःकरण में सदैव ईश्वर का स्मरण करना, बाह्य शत्रुओं के अतिरिक्त अपने आन्तरिक शत्रुओं का भी नाश करना, साधु पुरूष अर्थात् सज्जन पुरूष की रक्षा करना, मानव जाति व निरीह जीवों की रक्षा के लिए अपने प्राणों का भी परित्याग करने में किंचित भी संकोच न करना इत्यादि एक राजा के नैतिक कर्त्तव्य हैं।

आज मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ वैदिककालीन आर्यों से पूर्णतः भिन्न हो गई हैं। अच्छी शिक्षा व्यवस्था, अच्छा रहन–सहन, आधुनिक भौतिक सुख–सुविधाएँ आदि; आज प्रत्येक मनुष्य की अभिलाषा है, किन्तु इसके लिए स्वस्थ प्रतियोगिता के स्थान पर गलाकाट प्रतिस्पर्धा, छल कपट आदि का आश्रय लेना पूर्णतः अनुचित व अनैतिक है।

वर्तमान समय में आपराधिक प्रवृत्तियों का द्रुतगति से बढ़ना, आर्थिक व सामाजिक अपराधों का आधिक्य विश्व अथवा राष्ट्र के विकास का नही अपितु पतन का द्योतक है। आज मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है तथा नैतिकता का पतन भी हो रहा है। इस स्थिति से उबरने के लिए एक जुट होकर प्रयास करने की आवश्यकता है।

---

[275] मार्क. पु. 26.41

वैदिक युग में स्त्रियों को देवी तुल्य पूजनीया माना जाता था। उन्हें पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे। शिक्षा का अधिकार, अपने मनोनुकूल नीतियुक्त जीवन निर्वाह करने का अधिकार आदि। तत्कालीन युग में कन्या का जन्म दुःख का कारण नहीं होता था, किन्तु आज के सामाजिक परिवेश में नैतिकता का इतना अधिक पतन हो चुका है कि मनुष्य अपने ही परिवार में उत्पन्न पुत्री को अवांछनीय समझता है। कन्या को जन्म ले सकने के अधिकार से भी वंचित कर दिया जाता है।

आज विभिन्न अध्ययनों के उपरान्त जो आँकड़े सामने आ रहे हैं वे निश्चित ही चौकाने वाले हैं। वैज्ञानिक चिकित्सकीय उन्नति का दुरूपयोग कर माँ के गर्भ में ही संतान का लिंग ज्ञात कर उसके पुत्री होने पर उसे वहीं समाप्त कर दिया जाता है, जो कि घोर अनैतिक कृत्य है। संयुक्त राष्ट्र सचिवालय के जनसंख्या प्रभाग द्वारा प्राप्त वर्ष 2009 के समंकों के अनुसार लिंगानुपात प्राचीन भारतीय संस्कृति व उसके द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं के सर्वथा प्रतिकूल है।

तालिका

भारत सहित विश्व के प्रमुख देशों में लिंगानुपात[276]

राष्ट्र	बालक	बालिकाएँ
रूस	1000	1164
जापान	1000	1053
अमेरिका	1000	1023
नाइजीरिया	1000	995
बांगलादेश	1000	978

[276] स्रोत– साहित्य विश्लेषण, जर्नल्स एवम् संङ्गणक के आधार पर संकलित एवं विकसित

भारत	1000	936

पूर्व आई.पी.एस. अधिकारी व सामाजिक कार्यकर्ता किरण बेदी ने अपने एक लेख ''माँ–बेटी के दुःखद आँकड़ें'' (पत्रिका 12/05/2010, पृ.10) में उपर्युक्त विस्तृत जानकारी देते हुए लिखा है कि देश में बालिकाओं का अनुपात गिरावट की ओर है और इस तथ्य का सबसे दुःखद पक्ष यह है कि मनुष्य की नैतिकता का इतना पतन हो चुका है कि जिस देश में श्रद्धा के साथ देवियों की पूजा शक्ति, धन, स्वास्थ्य, विद्या, रक्षा, समृद्धि, शांति की अधिष्ठात्री देवी के रूप में करते हैं उस देश में कन्या भ्रूणहत्या का प्रतिशत निरन्तर अधिकता की ओर है। इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि शिक्षित महिलाओं द्वारा जन्म दिये 1000 बच्चों में से बालिकाओं की संख्या 876 रही जबकि अशिक्षित या अल्प शिक्षित महिलाओं में यह संख्या 920 रही। आज ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में लिङ्ग चयन अधिक किया जाता है, इसका एक मुख्य कारण दहेज प्रथा भी है, जिसके चलते हम पुत्र को ही संतान के रूप में देखना चाहते हैं।

उस अमूल्य भारतीय संस्कृति की इससे दयनीय दशा और क्या हो सकती है कि जिस भारत वर्ष में गार्गी, मैत्रेयी, शची जैसी ऋषिकाओं ने जन्म लिया, जिन्होंने अनेक वैदिक ऋचाओं का संकलन किया आज उसी देश में कन्या को अवांछित मानकर जन्म से पूर्व ही काल का ग्रास बना दिया जाता है। यह एक अमानवीय कृत्य है, जघन्य अपराध जिसे किसी भी तर्क द्वारा नैतिकता का स्वरूप नहीं दिया जा सकता।

वैदिक वाङ्मय सनातन ज्ञान गर्भित ऐसी अमूल्य संपदा है जो अपने भीतर लौकिक जीवन के लिए उपयोगी विविध सामग्री समेटे, सम्पूर्ण मानवजाति की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में सर्वत्र कहीं साकार रूप में तो कहीं निराकार रूप में, कहीं सम्पूर्ण चराचर जगत में एक ही शक्ति के रूप में तो कहीं प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों को भिन्न अभिधान

देकर सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, दयालु दीनानाथ की उपासना कर ब्रह्म में मनुष्य का एकात्म दर्शाया गया है। जब हम ईश्वरीय सत्ता की सत्यता में विश्वास कर लेंगे तो हम स्वतः ही सत्य, सदाचार, नीति व दयाभाव की ओर अग्रसर हो जाएंगे।

परिश्रम से अर्जित धन, श्रम की महत्ता, भोग–विलास, सुख–सुविधाएँ त्याग कर नीतिगत धनार्जन करने का उपदेश दिया गया है। तत्कालीन समाज में कृषि को सर्वश्रेष्ठ श्रम के रूप में वर्णित किया गया है। वर्तमान युग में भी प्रत्येक व्यक्ति अध्ययन कर बड़ी–बड़ी कम्पनियों में मोटी पगार अर्जित करना चाहते हैं। कृषि को आधुनिक काल में हेय दृष्टि से देखा जाता है। जनसंख्या वृद्धि के इस समय में कृषिकार्य से विमुखता, रोजगार के पर्याप्त अवसरों का अभाव, निर्धनता आदि कारणों से वर्तमान युवा पीढ़ी में निराशा का भाव घर करने लगा है।

ऋग्वेद के अक्षरसूक्त में नैतिकता की दीक्षा देते हुए ऋषि कवश ऐलूष अक्षो मौजवान् के वचन है कि जुआ, चोरी, डकैती, व्यसन आदि मनुष्य के लिए घातक है। वे कहते हैं कि सीमित साधन एवं नैतिकता के उच्च आदर्श ही मनुष्य की कल्याण यात्रा के पाथेय हैं–

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्।।
न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमारीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतो रनुव्रतामप जायामरोधम्।।
द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रूणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्।।
अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्य१ क्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहु र्न जानीमो नयता बद्धमेतम्।।
यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः।

न्युप्ताश्चव बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव।।

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः।

अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीन्वे दधत आ कृतानि।।

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः।

कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा।।

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा।

उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नामन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत् कृणोति।।

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्य हस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।

दिव्या अङ्गारा हरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति।।

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः व्क स्वित्।

ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो ऽन्येषामस्तमृप नक्तमेति।।

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापा ऽन्येषां जायां सुक्रतं च योनिम्।

पूर्वाह्णे अश्वान् युजुजे हि बभ्रून् त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद।।

यो वः सेनार्नीमहतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।

तस्मै कृणोमि न धना रूणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि।।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।

तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः।।

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो धोरेण चरिताभि धृष्णु।

नि वो नुः मन्युर्विशतामराति रन्यो बभ्रूणां प्रसिंतौ न्वस्तु।। [277]

[277] ऋग्वेद 10.34.1—14

सूक्त का केन्द्रीय कथ्य है कि किसी भी प्रकार का व्यसन व्यक्ति को पहले अपनी ओर आकर्षित करता है। मनुष्य की बुद्धि कुण्ठित हो जाती है तथा वह शुभ–अशुभ फलों का चिन्तन नहीं करता। व्यसनी मनुष्य गृहस्थ जीवन में, समाज में सर्वत्र ही निन्दित होता है।

''हे कितव! तू पासों से जुआ मत खेल, जीवन–निर्वाह के लिए तू कृषि कर अर्थात् परिश्रमी बन। नीति के मार्ग से कमाये हुए धन को बहुत मानता हुआ तू उसमें ही रमण कर अर्थात् संतोष रखकर प्रसन्न रहे। उस उत्तम व्यवसायरूप कृषि में ही गौ आदि पशु सुरक्षित रहते हैं; उसमें ही स्त्री आदि कुटुम्बीजन भी प्रसन्न रहते हैं।'' यही विचार संस्कृत रूपक साहित्य के विख्यात 'मृच्छकटिकम् के अन्तर्गत विस्तार से वर्णित है।[278]

वर्तमान युग में हो रहे कार्पोरेट अपराधों, आर्थिक मंदी आदि परोक्ष में अनैतिक आचरण ही है, जो अधिकारी धनवान है वे और अधिक धनवान हो जाते हैं, जो निर्धन है वे और अधिक निर्धन हो जाते हैं। अधिक धन पाने की लालसा में व्यक्ति विश्वासघात, असत्य कपट आदि का सहारा लेने में भी लेशमात्र संकोच नहीं करते।

वैदिक प्रबन्धन में नैतिक शिक्षा द्वारा सर्वप्रथम मनुष्य को स्वयं के विषय में शिक्षा देकर दिनचर्या नियमित व निर्धारित कर स्वयं को ईश्वरीय सत्ता में लीन करने की प्रेरणा देकर, परिवार, समाज के प्रति स्वकर्त्तव्यों का बोध कर राष्ट्र, प्रकृति एवम् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए मंगल कामना के साथ किसी के लिए कुछ कर सकने की अभिलाषा की ओर प्रेरित किया गया है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज में रह कर मनुष्य को प्रतिक्षण नई परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, परिस्थितियाँ चाहे अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल मनुष्य को सदैव स्वविवेक के साथ जीवन प्रबन्धित करते हुए धैर्य, क्षमा, स्वाध्याय, दान, दया, तप, सत्य, निःस्वार्थ, पवित्रता, भोगविमुखता आदि सदगुणों को अपने जीवन में अङ्गीकार करना चाहिये। नैतिकता के आधार पर

---

[278] द्रष्टवाः मृच्छ, 2 अङ्क

व्यवहार करने के लिए हम किसी को बाध्य नहीं कर सकते किन्तु प्राचीन भारतीय धार्मिक प्रबन्धन की यही विशेषता थी कि एक बालक को माँ के गर्भ से ही सदाचार, सत्य निष्ठा, अहिंसा, शिष्टता, नियमबद्धता, दयाभाव, स्वकर्त्तव्य के प्रति निष्ठा भाव आदि समस्त नैतिक मूल्यों की शिक्षा धर्मसूत्र के माध्यम से प्रतिक्षण प्रेमपूर्वक सिखाई जाती है और ऐसे सांस्कृतिक वातावरण में उत्पन्न बालक स्वयं ही अनैतिकता की ओर प्रवृत्त नहीं हो सकता। इन्ही वैदिक संस्कारों को वर्तमान विघटनात्मक, सामाजिक परिवेष में पुनः आत्मसात करने की आवश्यकता है।

मनुष्य मात्र का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने सुख–दुःख के साथ समस्त मानवता के सुख–दुःख का ध्यान रखे–

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमोगतः।।[279]

अर्थात् नर व नारायण के मध्य एकात्मकता को जो मनुष्य जानकर सभी जीवों में नारायण के दर्शन करता है तथा सदैव यह सोचता है कि जिस व्यवहार से मुझे सुख होगा वह दूसरों को भी सुख देगा तथा जिस व्यवहार से मुझे दुःख होगा वह दूसरों को भी दुखी करेगा वही मनुष्य सर्वश्रेष्ठ योगी है।

किन्तु इन सभी शिक्षाओं को तिरस्कृत करते हुए आज मनुष्य ने मनुष्य, मनुष्येत्तर प्राणियों पर नही अपितु प्रकृति पर भी अपना अनैतिक अधिकार जमा लिया है। यह पृथ्वी जिसे माँ के समान पूजा जाता था, आज उसी प्रकृति को चोटिल कर उजाड़कर भी मनुष्य उसकी आर्तपुकार सुन नहीं पा रहा है।

वैदिककालीन मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने वर्षों के कठिन तप व अध्ययन के पश्चात् श्रेष्ठ जीवन मूल्यों का प्रतिपादन किया तथा उन्हें धर्म के रूप में जन–जन को सुलभ करवाया। वेद मात्र भारतीय

---

[279] श्रीमद्भगवत् गीता 6.32

संस्कृति के धार्मिक ग्रन्थ नहीं अपितु अखिल विश्व के लिए अतुलित ज्ञान राशि के अक्षुण्ण भण्डार भी है।

जीवन के प्रत्येक आयुवर्ग में मनुष्य को किस प्रकार अपनी दिनचर्या नियमित व आचरण नैतिक गुणों से परिपूर्ण करना चाहिये इस उद्देश्य से वेदों में विविध सूक्तों के माध्यम से मनुष्य को मानवता की शिक्षा दी गई है। जीवन का प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम है उसे किस प्रकार ज्ञानार्जन के लिए अर्पित करना चाहिये, किस प्रकार एक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन कर ज्ञान अथवा किसी भी विद्या को पूर्णतः आत्मसात कर सकता है। अपने गुरू के प्रति समर्पण व श्रद्धा का भाव उसे किस प्रकार जीवन में उच्च शिखर पर ले जा सकता है, किस प्रकार एक श्रेष्ठ समर्पित विद्यार्थी एक अच्छा नागरिक बन कर अपने राष्ट्र की रक्षा में अपना योगदान दे सकता है इत्यादि इन सभी बातों की वेदों में भली तरह व्याख्या की गई है। किन्तु आधुनिक युवा पीढ़ी में इन सभी गुणों की न्यूनता दृष्टिगोचर होती है। अपने राष्ट्र की रक्षा, भ्रष्टाचार की रोकथाम, गुरूजनों व माता–पिता के प्रति आदर आदि सभी नैतिक मूल्यों के प्रति युवा उदासीन सा परिलक्षित होता है।

वाल्मीकि रामायण में भगवान श्रीराम को मर्यादा पुरूषोत्तम कहा गया है, श्रीराम के जीवन का उद्देश्य नैतिकता को उसके चरमोत्कर्ष पर पहुँचाना ही था और इस सत्कार्य के लिए उन्होंने आध्यात्मिकता को अपनी जीवन शैली में आत्मसात् कर लिया था। वाल्मीकि रामायण में श्री राम के सदाचारयुक्त, सुसंस्कृत, धर्मपरायण व सर्वोत्कृष्ट नैतिक जीवन का अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्राप्त है जो वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए अनुकरणीय व प्रेरणास्पद है–

आनृशं स्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः रामः।

राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरूषर्षभम्।।[280]

---

[280] वा.रा. 2.33.12

अर्थात् नैतिकता की रक्षा, धर्मपालन, प्रेम, शील, क्रूरता का अभाव, दया, विद्या, दम व शम इत्यादि गुण श्री राम में विद्यमान थे। आज का युग श्रीराम की तरह मर्यादा पुरूषोत्तम होने का, त्यागी होने का संकल्प भले ही न ले सके किन्तु इस भौतिकवादी युग में युवा पीढ़ी राम के सदाचारमय जीवन, सात्विकता, दया आदि गुणों के अनुसरण का प्रयास अवश्य कर सकती है।

जीवन की प्रत्येक अवस्था में, प्रत्येक आश्रम में मनुष्य को सदाचार का पालन करना चाहिये। सभी पर दया रखना चाहिये यही सर्वश्रेष्ठ नैतिकता है–

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम्।

न ह्वाचारविहीनस्य सुखमत्र परत्र वा।

यज्ञदानतपांसीह पुरूषस्य न भूतये।

भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते।

दुराचारो हि पुरूषो नेहायुर्विन्दते महत्।

कार्यो यत्नः सदाचरे आचारो हन्त्य लक्षणम्।।[281]

अर्थात् मनुष्यों को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिये। आचारहीन मनुष्य न तो इस लोक में सुख पाता है न ही परलोक में। आचारहीन मनुष्य का कल्याण किसी भी प्रकार संभव नहीं होता है न तो यज्ञ से न दान से न तपस्या से। सदाचार ही दुर्गुणों का नाश करता है अतः उसका सदैव पालन करना चाहिये। अपनी सम्पन्नता, समर्थता पर गर्वित होना अनैतिकता की श्रेणी में आता है।

भारतीय मनीषियों ने धर्मशास्त्र में जीवात्मा व ब्रह्म में एकात्म स्थापित कर यही शिक्षा दी है कि जिस अतुल सम्पदा व नैतिकता पर मनुष्य मिथ्या अभिमान करता है वह सब इस दुनिया में ही

---

[281] मार्क. पु. 34, 6–8

छोड़ कर उसे मृत्यु को अङ्गीकार करना होता है। अब ईश्वर ने जो सुख–दुःख हमें प्रदान किये हैं, उन्हें शिरोधार्य कर नैतिकता का अपने शुद्ध अन्तःकरण से पालन करना चाहिये।

सामान्य मनुष्य के सम्मुख प्रायः ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो जाती है जब वह यह नहीं जान पाता कि उचित व अनुचित क्या है। ऐसे समय में मनुष्य को निःस्वार्थ भाव से उन अनुकरणीय महापुरूषों के आचरण से प्रेरणा लेनी चाहिये जिन्होंने नैतिकता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है।

तैत्तरीय उपनिषद् में इस परिस्थिति से उबरने के लिए अत्यन्त स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं। शिष्य विद्याध्ययन की समाप्ति के पश्चात् जब गुरूकुल से विदा होते थे तब गुरू उन्हें श्रेष्ठ पुरूषों के आचरण का अनुसरण करने का उपदेश देते थे–

"अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृन्तविचिक्तिसा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभयाख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्यूः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः। ऐष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम।[282]

अर्थात् यदि तुमको कभी कर्त्तव्य निश्चित करने में कोई शंका उपस्थित हो जाय, अपनी बुद्धि से निश्चय करने में कठिनाई हो तो ऐसी स्थिति में वहाँ जो विचारवान्, परामर्श देने में कुशल, सत्कर्म व सदाचार में तत्पर, सबसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करने वाले महापुरूष उस प्रसंग में जो आचरण करते हों, उसी का अनुसरण तुम करना। इन परिस्थितियों में उनके द्वारा स्थापित आदर्शों का ही अनुगमन करना चाहिये। यही धर्मशास्त्रों का निचोड़ है। यही गुरू एवम् माता–पिता का उपदेश है।

---

[282] तै, उप. 1.11

यही वेदों का आदेश है। यही अनुशासन है, अतः सदैव कर्त्तव्य व सदाचार का पालन नैतिकता के रक्षण के साथ ही करना चाहिये।

वैदिक वाङ्मय में प्रज्ञाचक्षु ऋषियों का दर्शन कितना विस्तृत था कि जब शिष्य की दीक्षा पूर्ण होगी व वह सांसारिक जीवन की ओर अग्रसर होगा तब उसे अनेक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। अतः उसका भी समाधान व पथ प्रदर्शन पहले ही वेदों में वर्णित है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था मात्र खोखली विचारधारा पर आधारित है। शिक्षा प्रबन्धन में मूलभूत परिवर्तन की भी आवश्यकता है। नैतिक शिक्षा मात्र पुस्तकों में न होकर प्रायोगिक व पारिस्थितिक भी होना चाहिये, जिससे विद्यार्थी मात्र अंक प्राप्त करने के उद्देश्य से अध्ययन न करें अपितु एक अच्छा नागरिक बने व अपने राष्ट्र व नैतिकता की रक्षा करने में समर्थ हो सके।

जब मनुष्य अपनी अन्तरात्मा की पुकार सुनकर कार्य की ओर प्रवृत्त होगा, लोभ, मोह को त्याग कर मानवता की रक्षा के लिए तत्पर होगा तभी नैतिकता की रक्षा हो सकेगी और एक आदर्श विश्व की वैदिककालीन संकल्पना साकार हो सकेगी।

वेदों में दान का विशेष महत्त्व है। राजा बलि द्वारा दिया गया दान, दान महिमा की पराकाष्ठा है। भगवान के हस्त कमल पर दान का जल छोड़ते ही उन्होंने विराट् स्वरूप धारण कर लिया–

पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूद वामनः।

सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्।।[283]

दैत्यपति बलि से भगवान ने तीन पग भूमि अग्निशाला के लिए दान करने का आग्रह किया, दैत्यराज बलि ने निवेदन किया कि महाराज तीन पग भूमि से आपका कौनसा कार्य सिद्ध हो सकता है। कृपया सौ अथवा सौ हजार पग भूमि दान लीजिये–

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पदैः पदवतां वर।

---

[283] वामन पुराण

शतं शत सहस्त्रं वा पदानां मार्गतां भवान्।।[284]

वामन विराट स्वरूप में परिवर्तित हो गये। उन्होंने स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोकों को अपने तीनों पदों में नाप लिया। उन्होंने बलि को सुतल नामक पाताल दे दिया।

प्राचीन समय में दान देने और ग्रहण करने के अनेकानेक उदाहरण दृष्टव्य है। ऋषि मुनियों को गौदान, भूमिदान, स्वर्णदान की परम्परा प्रचलित थी।

मध्य युग में भी तत्कालीन राजा प्रजावत्सल होते थे। नैतिक मूल्यों का आदरपूर्वक पालन करते हुए अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते थे। कुए, सरोवर, धार्मिक स्थल, धर्मशालाएँ, चिकित्सालय एवम् मार्ग के दोनों और वृक्षारोपण कर दान की परम्परा को गतिमान रखते थे। वर्तमान युग में भी देश का प्रसिद्ध धार्मिक वर्ग समाजोत्थान के कार्य करता है। बिड़ला मंदिर, इस्कॉन मंदिर, अक्षर धाम, आदि दान परम्परा के स्वरूप ही है।

नारायण सेवा संस्थान अपंग बच्चों के लिए वरदान है। वहाँ करोड़ों रूपये दान स्वरूप प्राप्त होते हैं जो अपंग बालकों की चिकित्सा में काम आते हैं। वृद्धाश्रम भी इसी कड़ी में सफलता से गतिशील है। निराश्रित, वृद्ध, अपाहिज व्यक्ति इन आश्रमों का लाभ लेते हैं।

विदेशी समाजसेवी भी इस कार्य में अग्रणी स्थान रखते हैं। जापान के योहेई सासा कावा निप्पन फाउन्डेशन के अध्यक्ष हैं। उन्होंने भारत में सौ लाख डॉलर की मदद से ''सासा कावा इंडिया लेप्रेसी फाउन्डेशन'' को प्रारम्भ किया है। माइक्रो क्रेडिट का उपयोग करते हुए उन्होंने इसकी स्थापना की है। यह बहुत ही कम ब्याज लेता है। इनके पास मालिकाना हक है। ''माइक्रो फाइनेसिंग संस्थान'' के रूप में सम्मिलित होने की पात्रता रखता है। कुष्ठ रोगियों को यह संस्थान जीविका प्रदान करता है। सासा कावा इंडिया फाउन्डेशन मध्यप्रदेश में भी कुछ समूहों को बेटरी

---

[284] वामन पुराण

बनाने का प्रशिक्षण देता है। इनका कार्यक्षेत्र कुष्ठ रोगियों की बस्तियाँ है जहाँ उन्हें उचित चिकित्सकीय सहायता प्रदान कर स्वस्थ होने पर रोजगार दिया जाता है।

वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति अथवा संस्थान अनैतिक आचरण नहीं कर रहे हैं अपितु अनेक ऐसे व्यक्ति व संस्थाएँ हैं जो नैतिक मूल्यों के रक्षण हेतु व मानवता की निःस्वार्थ सेवा कार्य कर रहे हैं।

कार्पोरेट जगत भी सहायता समूह में सम्मिलित है। एड्स/एच.आइ.व्ही. के विरूद्ध भारत पेट्रोलियम कार्पोरेशन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह कम्पनी एड्स पीड़ितों के लिए किये जाने वाले उपचार का व्यय भी वहन करती है।

वर्तमान समय में मोबाइल फोन भी दानपात्र बन गऐ हैं। मंदिर तथा गैर सरकारी संगठन मोबाइल फोन द्वारा दान ग्रहण करेंगे।(नईदुनिया दि. 18.09.2009)

मोबाइल इन्टरेक्टिव वायस रिस्पान्स सिस्टम के द्वारा इस्कॉन अपने कार्यक्रम के तहत महाराष्ट्र के लगभग एक हजार विद्यालयों को दोपहर का भोजन वितरण कर रहा है। केंसर पेशन्ट एसोसिएशन ऑफ इंडिया जो कि एक गैर सरकारी संगठन है। गेट्स फाउन्डेशन (बिल एण्ड मिलिन्डा गेट्स) ने एड्स पीड़ितों के लिए लगभग 216 करोड़ रूपये दान की घोषणा की है। यह राशि महाराष्ट्र, तमिलनाडु, नागालेन्ड और मणिपुर क्षेत्र के एड्स पीड़ितों के लिए है।

वालन्टरी हेल्थ सर्विस ने भी लगभग 60 करोड़ रूपये तमिलनाडु में परिवार नियोजन सामग्री हेतु प्रदान की है। महाराष्ट्र में दो संगठन फेमिली हेल्थ इन्टरनेशनल एवं पाथ फाइन्डर को भी 48 करोड़ और 39 करोड़ रूपये एड्स रोगियों के उपचार के लिए प्रदान किये हैं। ऑस्ट्रेलियन इन्टरनेशनल हेल्थ इन्स्टिट्यूट को 23 करोड़ एड्स के रोकथाम के लिए सहायता के रूप में प्राप्त हुए हैं। गेट्स फाउन्डेशन ने 120 करोड़ रूपये एच.आइ.व्ही की रोकथाम के लिए स्वीकृत किये हैं।

कोकाकोला जैसी प्रतिष्ठित कम्पनी मात्र शीतल पेय के लिए नहीं जानी जाती अपितु यह कम्पनी पर्यावरण को सुरक्षित करने के लिए जल संरक्षण, स्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र की ओर अग्रसर हो रही है। शिक्षा के क्षेत्र में विजयवाड़ा और आन्ध्रप्रदेश में शाला भवनों का निर्माण, क्षतिग्रस्त शाला भवनों का जीर्णोद्धार, छात्रों को गणवेश और शिक्षकों के लिए वेतन आदि का प्रबन्धन किया जाता है। विजयवाड़ा के समीप रेनवाटर हार्वेस्टिन्ग, ग्राउन्ड वाटर रीजार्जिंग अभियान चलाया तथा लगभग 2000 पौधे लगाकर हरियाली के लिए पहल की। जम्मू कश्मीर में विकलांगों को कृत्रिम अंग वितरित किये। कोंकण में एम्बूलेंस भेंट की। राजस्थान राज्य में भूजल मण्डल के साथ भागीदारी की। माँ व बच्चे के स्वास्थ्य शिक्षण केन्द्र लगाकर औषध वितरण किया। मरीजों की सुविधा के लिए पक्की सड़कें बनवाई। पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए बोतलों का रिसाइकलिंग कार्यक्रम प्रारम्भ किया। समाचार, रेडियो, प्रचारवाहनों तथा दूरदर्शन के माध्यम से लोगों में जागरूकता लाने का प्रयास किया।

प्राप्त जानकारी के अनुसार कलोनिज़म डेवलपमेन्ट फाइनेन्शियल सर्विसेज का तमिलनाडू में विस्तार हो चुका है। प्रारम्भ में यह ''धनम्'' फाउन्डेशन नाम से प्रसिद्ध थी। एक ओर सेवा बैंक है जो स्वनियोजित गरीब महिलाओं की माइक्रो सेविंग, माइक्रो क्रेडिट और माइक्रो इश्युरेंस जैसी सेवाएँ प्रदान करता है। केरल स्थित साउथ इन्डियन फेडरेशन ऑफ फिशर मेन्स सोसायटीज मछुआ कामगारों का नेटवर्क है। यहाँ क्रेडिट और डिपाजिट का सामंजस्य अनुकरणीय है।

निःस्वार्थ भावना से किसी के लिए कोई कार्य करना सर्वोत्कृष्ट नैतिकता है। जब बड़ी संस्थाएँ अपनी आय का कुछ प्रतिशत समाज सेवा के लिए समर्पित करती है तब उन्हें आत्मिक सुख प्राप्त होता है। समर्थ व्यक्ति तो दूसरों के लिए कुछ करने की अभिलाषा होने पर उस विचार को चरितार्थ भी कर सकता है किन्तु समाज में अनेक ऐसे भी उदाहरण हैं कि जहाँ व्यक्ति स्वयं निर्धन व असमर्थ होने पर भी दूसरों की सेवा का जज्बा रखते हैं।

नैतिक मूल्यों को बाल्यकाल से ही व्यक्ति के अन्तरमन में स्थापित कर देना ही वैदिक वाङ्मय की शिक्षा है। भारतीय संस्कृति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्तर पर नैतिकता की रक्षा के प्रयास करना चाहिये, ताकि राष्ट्र पुनः अपने स्वर्णिम अतीत की प्राप्ति कर सके।

वैदिक प्रबन्धन – सामाजिक समृद्धि

वैदिककालीन प्रबन्धन एवम् सांस्कृतिक परम्पराएँ अद्यतन ऐश्वर्यशाली एवम् ज्ञान मार्ग प्रदायिनी है। वेदों का भारतीय संस्कृति में अप्रतिम स्थान है। वैदिक वाङ्मय ही अन्य विश्व सभ्यताओं, संस्कृतियों का उद्गम स्थल है। वेदों द्वारा प्रदत्त जीवन मूल्य, सदाचार सिद्धान्त आज भी ओजपूर्ण, सरस, उदात्त प्रतीत होते हैं। भारतीय मेधा में जप, तप, गहन अध्ययन व ईश स्मरण द्वारा जिन मन्त्रों का संकलन किया वे तत्कालीन समाज की समृद्धि के ही द्योतक हैं।

वर्तमान मानव भौतिक सुविधाओं का विस्तार कर उन्हें प्रगति का आवरण दे रहा है। यह गहन अध्ययन का विषय है कि क्या यही वास्तविक प्रगति है? यह प्रगति मनुष्य को कहाँ ले जाएगी? क्या इस भौतिक प्रगति की कोई सीमा, कोई अन्त नहीं? यह प्रगति मनुष्य को चारित्रिक उन्नति के चरमोत्कर्ष पर ले जाएगी अथवा पतन के गर्त में? इन प्रश्नों का उत्तर तथाकथित प्रगतिवादियों के पास नहीं है। वेद भारतीय वाङ्मय ही नहीं अपितु समस्त विश्व संस्कृति के आद्य ग्रन्थ हैं, जिनकी समृद्धिशाली परम्परा रत्नों से भी कहीं अधिक अमूल्य है। एक ओर जहाँ वेद ईश्वर में एकात्म स्थापित करने का मार्ग दिखाता है वहीं आधुनिक मनुष्य ईश्वर के अस्तित्व को ही नकारते हुए नित नवीन प्रयोगों में लगा हुआ है जो समस्त मानव जाति के लिए भविष्य में अनेक दुरूह समस्याओं को जन्म देने वाला है।

समाज एक ऐसी संस्था है जो एक परिवार की भाँति होती है, जहाँ भिन्न विचारधारा के लोग अदृश्य सूत्र के द्वारा आपस में सम्बद्ध हैं। परस्पर दुःख में, सुख में, परम्पराओं के निर्वहन में, अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में सौहार्द्र भाव से एक दूसरे की सहायता करते हुए जीवनयापन करते हैं।

किन्तु जब इन सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में यदि वैमनस्य व स्वार्थ परायणता का अंकुर जन्म लेता है तब सामाजिक समृद्धि लुप्त हो जाती है।

सामाजिक समृद्धि के लिए जो घटक उत्तरदायी होते हैं वे प्रायः निम्न हैं–

1– आर्थिक घटक

2– पर्यावरणीय घटक

3– धार्मिक घटक

4– राजनैतिक घटक

5– शैक्षणिक घटक

जब किसी समाज में उपर्युक्त घटकों का समावेश समानरूप से हो,उनकी उपादेयता, उनका महत्त्व प्रत्येक सामाजिक प्राणी जाने तथा उसके प्रति अपने कर्त्तव्य को समझे तभी समाज समृद्धिशाली हो सकता है। नैतिक आचरण, सदाचार प्रवृत्ति तथा सभी के लिए कुछ कर सकने की अभिलाषा ही उस व्यक्ति को तथा समाज के अन्य सदस्यों को समृद्धिशाली बना सकता है।

वैदिककालीन सामाजिक प्रबन्धन समृद्ध था। वे सभी घटक जो एक समाज की नींव मजबूत बनाते हैं, उनकी उपस्थिति उचित अनुपात में वैदिक समाज में थी। वेदों में आध्यात्मिक ही नहीं लौकिक जीवन से सम्बद्ध सभी विषयों का समावेश किया गया है। वेद मानव जीवन के अभिन्न अंग है, जिनके अभाव में मनुष्य का, समाज का व सम्पूर्ण राष्ट्र का विकास असम्भव है। भारतीय सांस्कृतिक चेतना ने आर्यत्व का श्रेष्ठ भार अर्थात् 'मनुर्भवः' का सिद्धान्त, नैतिक आदर्शों का व जीवन मूल्यों का निर्धारण, सामाजिक प्रबन्धकीय ढाँचा, विश्व बन्धुत्व की भावना सामाजिक एकीकरण की भावना आदि को प्रतिस्थापित किया है। तत्कालीन समाज की संकल्पना के आरम्भ में ही मनुष्य मात्र की उन्नति के उपाय समाज की रचना प्रक्रिया, सांस्कृतिक उन्नति आदि विषय भारतीय चिन्तन की परिधि में आ चुके थे। तत्कालीन मनीषियों का चिन्तन इतना व्यापक था कि राष्ट्र, पृथिवि,

पर्यावरण आदि से मनुष्य का अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध का अन्वेषण वे सुदूर वैदिक सभ्यता के समय ही कर चुके थे।

सर्वप्रथम समाज की समृद्धि उस समाज की सर्वप्रथम इकाई अर्थात मनुष्य पर निर्भर होती है। व्यक्ति स्वयं से अपने परिवार से, कार्यक्षेत्र से, समाज से, राष्ट्र से संतुष्ट हो तो वह अपने कार्य को अधिक ऊर्जा व स्फूर्ति के साथ सम्पन्न कर सकेगा और शनैः शनैः उन्नति की ओर अग्रसर होगा यही सामाजिक समृद्धि का प्रथम सोपान है। वैदिक वाङ्मय में इन सभी सूक्ष्म विषयों पर भी पर्याप्त ध्यानाकर्षण प्राप्त है।

वैदिक काल की आरम्भिक अवस्था में तत्कालीन मेधा इतनी प्रखर थी कि उसने सामाजिक समृद्धि हेतु मनुष्य मात्र के विकास से आरम्भ कर सम्पूर्ण समाज के विकास पर आधारित प्रत्येक पक्ष का सूक्ष्म अध्ययन किया। वर्तमान समय में समृद्धि के परिमाण प्राचीनकाल से पूर्णतः भिन्न हो चुके हैं किन्तु वास्तविक समृद्धि वही होती है जो मनुष्य के अन्तर्मन को तृप्त व संतुष्ट कर दे और यही भास्वर भारतीय संस्कृति का आधार बना तथा वर्तमान में भी प्रकाशमान हो रहा है। वैदिककालीन ऋषियों तथा आर्यों के ज्ञान, सत्यवादिता, सदाचार, नैतिक मूल्यों के रक्षण, त्याग, प्रकृति प्रेम, आदि के ही कारण सनातन भारतीय संस्कृति आलोकित हो रही है। व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व विकास में उन्हीं मूल्यों को आत्मसात् कर मौलिक संकल्पना के साथ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समृद्धि के विस्तार के लिए अपनी प्राचीन धरोहर का प्रचार व प्रसार करना चाहिए।

वर्तमान सामाजिक प्रबन्धकीय ढाँचे में सुधार लाने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाने की। आज सबसे बड़ी विड़म्बना यह है कि व्यक्ति के मस्तिष्क में चल रही उहापोह को समझ पाना कठिन हो रहा है। व्यक्ति अपने भविष्य की चिन्ता में अपने वर्तमान को समाप्त कर रहा है और यही कारण है कि वह अपने भविष्य को संवार पाने में भी असफल रहता है।

सम्पूर्ण समाज को समृद्ध व सुदृढ़ बनाने के लिए उसके मूल में जाकर व्यक्ति को उसके सुधार की प्रक्रिया का आरम्भ स्वयं अपने परिवार से ही करना होगा। सामाजिक प्रगति को भिन्न–भिन्न आर्थिक व राजनीतिक विचारधाराएँ प्रभावित करती है। वर्तमान अर्थव्यवस्था तथा प्रायः सभी राजनीतिज्ञ अत्यधिक स्वार्थी हो गए हैं। व्यक्ति मात्र अपनी प्रगति की अभिलाषा करता है, राष्ट्र व समाज के विषय में चिन्तन को कोई महत्त्व नहीं देता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह सर्वाधिक आवश्यक है कि समस्त राष्ट्र एकजुट होकर सामाजिक समृद्धि के विषय में चिन्तन करे; राजनीतिक दल, अर्थशास्त्री, विचारक, आलोचक, उद्योगपति, विद्वान् तथा समस्त जनमानस इस दिशा में विचार कर; कानून बनाकर इसे निष्ठापूर्वक अमल में लाएँ तो ही अच्छे परिणाम सामने आएँगे। आज भारत को पुनः अस्तित्व निर्माण के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। यदि हम प्रगति की सकारात्मक दौड़ में सम्मिलित होकर जीतना चाहते हैं तो हमें अपनी प्राचीन संस्कृति तथा विकसित देशों के मूलभूत ढाँचे का अध्ययन करना होगा।

अपनी प्राचीन सांस्कृतिक समृद्धि तथा विकसित देशों द्वारा अपनाए जा रहे सांस्कृतिक मूल्यों तथा राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना से प्रेरणा लेकर अपने समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास करके ही हम अपनी सामाजिक समृद्धि पुनः प्राप्त कर सकते हैं। यही नहीं प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक प्रबन्धन इतना पुष्ट है कि समस्त विश्व में व्याप्त अनैतिकता को दूर करने का सामर्थ्य रखता है।

मनुष्य के चहुँ ओर व्याप्त वातावरण व वस्तुओं के उचित प्रबन्धन द्वारा भी समाज को समृद्धिशाली बनाने का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। मानव संसाधन प्रबन्धन, प्राकृतिक प्रबन्धन, आपदा प्रबधन, शिक्षा प्रबन्धन संवाद प्रबन्धन आदि प्रबन्धन के विभिन्न क्षेत्रों में सुनियोजित विधि से प्रत्येक कदम आगे बढ़ाकर कार्य करने की आवश्यकता है। समाज में शान्ति व्यवस्था, स्थिरता स्थापित की जाकर ऐसी व्यवस्था का निर्माण कर सके जिससे समाज के धनिक वर्ग ही नहीं अपितु

निर्धन अथवा कम आय वाले परिवार भी अपना कार्य, व्यवसाय तथा सामाजिक गतिविधियों को निर्विघ्नरूप से सम्पन्न कर सके।

समाज को एक संगठन के रूप में कार्य कर प्रथम इकाई मनुष्य के विकास के विषय में कार्य करना चाहिये। यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं से अपने परिवार से अपने कार्य से, व्यवसाय से प्रसन्न होगा तो समाज अथवा राष्ट्र स्वतः ही समृद्धि को प्राप्त कर सकेगा। जिस प्रकार वैदिक काल में गुरूकुल परम्परा में गुरू अपने विद्यार्थियों को विद्या प्रदान करने के साथ–साथ, गंभीरता, धैर्य, सकारात्मकता, सज्जनता, सत्यवादिता व समर्पण का मार्ग दर्शाते हैं। आश्रम में बालक को समूह में रहकर जीने की कला का ज्ञान होता है, सभी परिस्थितियों में अपने गुरू तथा मित्रों से वैचारिक एकात्म तथा संतुलन स्थापित करना होता है। गुरूकुल में प्रत्येक विद्यार्थी को आत्मोत्थान के लिए, स्वयं के परिष्कार के लिए तथा सम्पूर्ण जीवन को सफलतापूर्वक निर्वाह करने के लिए नियमितता एवम् सुव्यवस्थित प्रयत्नों द्वारा अध्ययन व व्यक्तिगत विकास के लिए प्रेरित किया जाता था।

स्वप्रबन्धन के सिद्धान्तों के निर्वहन के लिए आश्रम में उपलब्ध स्रोतों का सम्यक् व सुनियोजित उपयोग कर गुरूकुल की व्यवस्था संचालित की जाती थी। यही स्वप्रबन्धन का सिद्धान्त तथा उपलब्ध संसाधनों का समुचित दोहन के स्थान पर मनुष्य प्रकृति का शोषण कर रहा है और यही विडम्बना है कि व्यक्ति अपनी सन्तानों का भविष्य सुनिश्चित व समृद्ध करने के स्थान पर अन्धकारमय कर रहा है। व्यक्ति स्वयं को तथा अपनी सन्तति के भविष्य को केन्द्र में रखकर आर्थिक व सामाजिक समृद्धि के लिए कौनसा मार्ग अपनाए यही चिन्तन वर्तमान युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। आधुनिक भारत में शिक्षा व अन्य मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव में एक विशेष वर्ग की आय में होती वृद्धि सारे देश की कार्यकुशलता तथा अर्थव्यवस्था को ध्वस्त कर रही है। वर्तमान युवा पीढ़ी योग्य होकर भी संसाधनों के अभाव में उन्नति कर पाने में स्वयं को असमर्थ पा रही है।

निम्न तथा मध्यम आयवर्ग के उत्थान के लिए नवीन वैचारिक व नीतिगत चिन्तन आवश्यक है। वैश्विक दृष्टिकोण से देखा जाए तो व्यक्ति तात्कालिक लाभ के लिए लम्बी अवधि के पश्चात् प्राप्त होने वाले परिणामों के विषय में सचेत नहीं है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अम्बानी परिवार सर्वाधिक चर्चित भारतीय परिवार के रूप में प्रकाश में आया है। प्रथम तो एक पिता के द्वारा परिश्रम से अर्जित व्यावसायिक संपदा, पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्रों के मध्य विवाद व सम्पत्ति का विघटन तथा पुनः पारिवारिक संस्कारों व व्यावसायिक लाभ के चलते एकीकरण भारतीय प्राचीन संस्कारों की ओर ही इंगित करता है।

भारतीय संस्कृति सदैव परिवारवादी परम्परा की द्योतक रही है न कि पारिवारिक विघटन की। एकल परिवार की संस्कृति पाश्चात्य हो सकती है किन्तु अद्यतन हो रहे सर्वेक्षणों की ओर विचार किया जाए तो विदेशों में भी भारतीय पौराणिक संस्कारों की ओर अत्यधिक रूचि जागृत हो रही है। लोग अब पुनः संयुक्त परिवार के महत्त्व को जान कर उस ओर प्रवृत्त हो रहे हैं।

किन्तु वर्तमान समय में यदि व्यक्ति मात्र अधिकारों की ओर अपने विचारों को केन्द्रित कर कर्त्तव्यों की उपेक्षा करेगा तो मानव सभ्यता का वास्तविक विकास सम्भव नहीं हो सकता। वैदिक साहित्य में वर्णित परिवार व्यवस्था तो त्याग व कर्त्तव्य पर केन्द्रित अधिकारों पर आधारित थी। यदि व्यक्ति त्याग भावना की उपेक्षा कर और भी अधिक पाने की लालसा में अन्तहीन तृष्णा में डूब कर सांस्कृतिक समृद्धि को समाप्त करने में भी संकोच नहीं कर रहा है। सीमित प्राकृतिक संसाधनों का अनुचित प्रयोग; असीमित अभिलाषाएँ, प्रकृति के साथ खिलवाड़ इत्यादि भोगवादी विचारधाराएँ जो मानव विचारधारा को भ्रमित करती है, उन्हें भुलाकर त्याग, सत्य, सहनशीलता, परोपकार, दया जैसी नैतिक मूल्यों पर आधारित वैदिक अवधारणाओं को महत्त्व देना होगा।

किस प्रकार एक बहुप्रतिष्ठित परिवार एक सकारात्मक रवैया अपना कर अपने परिवार, राष्ट्र ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के आर्थिक समीकरणों पर अपना प्रभाव डालता है, यह एक विचारणीय

प्रश्न है। किसी भी समाज की समृद्धि उसके सफल व्यापार प्रबन्धन व मुद्रा विनिमय पर भी निर्भर होती है।

स्व. श्री धीरूभाई अम्बानी द्वारा स्थापित व्यावसायिक समूह की स्थापना की गई। प्राप्त जानकारी के अनुसार इस व्यावसायिक समूह की सम्पूर्ण सम्पत्ति 1977 में लगभग 69 लाख रूपये थी, जिसे अपने अथक प्रयासों, दृढ़ निश्चय, कर्त्तव्यपरायणता के द्वारा 2005 तक बढ़ कर 99 हजार करोड़ रूपये का आँकड़ा पार कर चुकी थी। किन्तु दुर्भाग्यवश पिता की मृत्यु के पश्चात् मुकेश एवम् अनिल अम्बानी के मध्य स्वामित्व के मुद्दे को लेकर उठे विवाद से सम्पूर्ण भारतीय व्यावसायिक जगत् में हडकम्प मचा दिया। यही नहीं अपनी अथाह सम्पत्ति के चलते इस परिवार को भारतीय बाजार ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विशेष महत्त्व दिया गया।

इस विवाद व विभाजन ने उनके परिवार को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय व्यावसायिक जगत को प्रभावित किया तथा निवेशकों को भी प्रभावित किया।

रिलायंस समूह भारत का सबसे बड़ा व्यावसायिक समूह है तथा वैश्विक स्तर पर भी अपना महत्त्व रखता है, क्योंकि कई व्यावसायिक क्षेत्रों में यह समूह फैला है। इस समूह के द्वारा पेट्रोलियम, टेक्सटाईल, रिफाइनरी, तेल शोधन, तेल वितरण आदि क्षेत्रों में व्यवसाय किया जाता है।

पिता की मृत्यु के पश्चात् भी दोनों अम्बानी बन्धुओं ने कुछ समय तक एक स्पष्ट सोच के साथ निश्चित दिशा में अपने व्यवसाय को एकता के साथ आगे बढ़ाया किन्तु दिसम्बर 2004 में दोनों के मध्य विवाद प्रकाश में आया तथा जून, 2005 में विभाजन में परिवर्तित हो गया।

प्राप्त आँकड़ों के अनुसार विभाजन के पश्चात् अगले छः महीनों में ही इस व्यावसायिक समूह को 45000 करोड़ रूपयों की हानि हुई, समूह को कई बार अर्थदण्ड भी चुकाना पड़ा।

वैदिक वाङ्मय संयुक्त परिवार का पक्षधर है अतः सर्वत्र विघटन के स्थान पर एकता के सूत्रों का वर्णन प्राप्त होता है। अम्बानी परिवार में हुए विवाद व विभाजन को भारत में अब तक हुआ सबसे बड़ा विभाजन कहा जा सकता है।

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः[285]

अर्थात् मित्रों समान होकर जागो। सभी प्राणियों को एकमत होकर रहने की शिक्षा वेदों में दी गई है। भारतीय सांस्कृतिक प्रबन्धन ही कुछ इस प्रकार का है जहाँ परिवार को आपसी सौहार्द, प्रेम व त्याग की भावना के साथ रहने की प्रेरणा सर्वत्र दी गई है।

आपस में बैर भावना रखने के स्थान पर पुरूषार्थ द्वारा सफलता अर्जित करने को कहा गया है। समाज को समृद्ध बनाने के लिए पुरूषार्थ आवश्यक है।

कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।[286]

अर्थात् मेरे दाहिने हाथ में पुरूषार्थ है तथा बांये हाथ में सफलता रखी है।

इस बात का ज्वलंत उदाहरण स्वयं स्वर्गीय धीरूभाई अम्बानी ही है, जिन्होंने स्वयं एक पूँजीपति के रूप में जन्म नहीं लिया अपितु निर्धनता से देश के सर्वाधिक धनी वर्ग में सम्मिलित होने तक का मार्ग स्वयं अपने पुरूषार्थ द्वारा अर्जित किया है। एक सामान्य कर्मचारी के रूप में अपनी जीविकार्जन आरम्भ करके रिलायंस समूह की स्थापना तक की यात्रा करने पर उन्हें सदैव एक कर्मठ पुरूष के रूप में जाना जाएगा।

विघटन के लगभग पाँच वर्षों पश्चात् मुकेश अम्बानी व अनिल अम्बानी ने पुनः एक दूसरे का साथ देने की घोषणा कर दी है। यह घोषणा मात्र दो भाइयों के एक होने की नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए समृद्धि की नई बयार के रूप में सामने आई है।

---

[285] ऋक् 10.101.1
[286] अथर्व–7.52.8

'आर.आई.एल.' व 'रिलायंस एडीएजी' को उम्मीद ही नहीं विश्वास भी है कि इन प्रयासों से सौहार्द्र, सहयोग और तालमेल का माहौल बनेगा जिससे दोनों समूहों के अंशधारकों को लाभ होगा। (दोनों समूहों द्वारा प्रेषित बयान)

एकता सदैव समृद्धि की सूचक होती है। कार्पोरेट जगत् में भी इस समझौते का सकारात्मक प्रभाव पड़ा। श्री एस.पी. तुलस्यान के अनुसार ''अम्बानी बन्धुओं के मध्य समझौते के बाद रिलायंस समूह के शेयरों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

24 मई, 2010 को समझौते के बाद शेयरों में बढ़ोतरी हुई, सर्वेक्षण के परिणाम इस प्रकार हैं–

तालिका

अम्बानी बंधुओं के समझौते के पष्चात् रिलायंस समूह के शेयरों में वृद्धिदर[287]

कम्पनी	वृद्धि प्रतिषत	शेयरो के भाव
आर.आई.एल	2-58%	1021
आर. पॉवर	7.86%	149
आर. इन्फ्रा	6.23%	1050
आर.एन.आर.एल	22-58%	54
आर. केपिटल	4.80%	672

प्राचीन भारतीय कौटुम्बिक प्रणाली में सब एकमत होकर रहते हैं। उसी प्रकार सामाजिक सम्पन्नता के लिए भी सामाजिक उपयोगिता के मुद्दे पर स्वकर्त्तव्य परायणता, प्रगतिशीलता, सबलता, पुरूषार्थ व त्याग भावना के साथ एकजुट होकर प्रयास करने होंगे।

किसी भी देश का सांस्कृतिक दृष्टिकोण अथवा उसकी सांस्कृतिक परम्परा ही वहाँ के निवासियों की कार्यशैली व उनके आदर्श तथा उनकी जीवनचर्या का निर्धारण करते हैं। भारतीय सांस्कृतिक विरासत श्रीसम्पन्न है, उत्तम आदर्शों, नैतिक मूल्यों का पालन करते हुए, कर्त्तव्य की दृढ़

[287] बिजनेस स्टेन्डर्ड, 25 मई 2010 पृ. 1

भावना व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्शों से पोषित हैं तथा इसका प्रबन्धन पूर्णतः परिपक्व है। प्रबन्धन वास्तविक रूप में सुसंगठित, सुव्यवस्थित तथा सुनियोजित मानवीय जीवन शैली है। प्राचीन भारतीय मेधा ने अपनी विचार प्रक्रिया बौद्धिक निपुणता से अपनी–अपनी अन्तर्दृष्टि समाप्त कर स्वयं की प्रबन्धन शैली विकसित की जो सुदूर वैदिक काल से अद्यतन अपनी पूर्ण ऊर्जा के साथ जीवित है।

विश्व की अन्य सभी संस्कृतियों की तुलना में वैदिक संस्कृति की विलक्षणता यह है कि यहाँ स्वप्रबन्धन को सर्वाधिक महत्त्व के साथ वर्णित किया गया है। जब प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को प्रबन्धित कर सकने में समर्थ होगा तब ही वह दूसरों को नैतिक आचरण के लिए प्रेरित कर सकेगा। परस्पर विश्वास तथा आपसी सामञ्जस्य से ही एक समृद्ध संस्कृति का निर्माण हो सकेगा।

सामाजिक व्यवस्था के स्थायित्व व उसे संधारित करने के लिए उसे सुदृढ़ बनाने के लिए, उसे समृद्धशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि नीति निर्देशक संस्थाएँ सुसंगत हों, न्यायपूर्ण हों। अर्थात् राजा, नेता अथवा संगठन का उच्चाधिकारी हो वह प्रत्येक नागरिक अथवा संस्था के सदस्य की नैतिक व उचित अभिलाषाएँ जो रीति व परम्पराओं का आदर करती हो, उन्हें पूरी करे यही राजा का उत्तरदायित्व है।

चाहे वह परिवार का मुखिया हो, किसी कम्पनी का अधिकारी हो, लोकतान्त्रिक राष्ट्र का राजनेता हो अथवा राजा हो सभी को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के लिए अनुशासन एवम् व्यवस्था को सुप्रबन्धित रखते हुए साहस व नैतिकता के साथ स्वकर्त्तव्य का निर्वहन करना होगा तथा साथ ही यह भी विचारना होगा कि किस प्रकार अपने अधिनस्थों को प्रसन्न रख सके, क्योंकि प्रसन्नता ही समृद्धि का मार्ग सुदृढ़ करती है।

वैदिक वाङ्मय में उच्चपद के अधिकारियों एवम् शासकों का भी वर्णन है, जिसमें उनके कर्त्तव्यों के विषय में विस्तृत विवेचन किया गया है। समर्पित धर्मपरायण, सत्यवादी, निष्ठावान, दानी,

शुद्धचरित्र, इत्यादि सद्गुणों से अपने चरित्र को प्रकाशमान कर अपनी प्रजा का रक्षण कर राज्य व संस्था की उत्तरोत्तर उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना चाहिये।

प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा इतिहास व साहित्य जीवन प्रबन्धन के प्रायः सभी विषयों यथा–वाणिज्य, कला, प्रशासन, विज्ञान, साहित्य, औषधि, आध्यात्म दर्शन, सामाजिक व्यवस्था, ज्योतिष आदि सभी क्षेत्र में अपना विस्तृत, विकसित चिन्तन प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान समय में प्रबन्धकीय शिक्षणों के विस्तृत अध्ययन के लिए अनेक प्रबुद्ध व्यक्तियों के विचार उपलब्ध हैं किन्तु मात्र साहित्यिक ज्ञान की अपेक्षा वेदों में वर्णित मनुष्य जीवन से सम्बद्ध प्रशिक्षण, घटने वाली घटनाओं के वर्णन से लेकर मोक्ष प्राप्ति के साधनों के प्रबन्धन सम्बन्धी साहित्य व प्रायोगिक सिद्ध ज्ञान अधिक श्रेयस्कर है।

वैज्ञानिकों ने एक मत होकर यह स्वीकार किया है कि अन्य संस्कृतियों के उद्भव एवम् विकास में भारतीय संस्कृति का विशेष महत्त्व है। वैदिक संस्कृति न केवल विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृतियों में से है अपितु स्थायित्व, प्रेरणा, सारगर्भिता, दूरदृष्टि के कारण सम्पूर्ण विश्व संस्कृति की परिचायक है। देववाणी संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति के विषय में विभिन्न महान् व्यक्तियों के विचार राष्ट्रीय, शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित पुस्तक '' 'संस्कृत' भारत की आत्मा तथा विवेक की वाणी '' नामक पुस्तक से उधृत है।

वैदिक वाङ्मयरूपी सरस सरिता अनादिकाल से अनवरत प्रवाहमान है, उसमें उत्तर वैदिक वाङ्मय पौराणिक साहित्य, लौकिक साहित्यरूपी धाराएँ जुड़ती गई और यह धारा अद्यतन प्रवाहमान हैं।

''ग्रीक से अधिक पूर्ण, लेटिन से अधिक व्यापक तथा इन दोनों भाषाओं से अधिक परिष्कृत संस्कृत भाषा की संरचना अद्भुत है। हिन्दू साहित्य के समुचित भाग से परिचित होने के लिए एक जीवन पर्याप्त नहीं है।'' **–सर विलियम जोन्स**

अर्थात् भारतीय संस्कृति व सामाजिक व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी कि उसको पाष्चात्य देषों के विद्वानों ने भी पूर्ण श्रद्धा भाव से नमन किया है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू भी अपनी प्राचीन धरोहर के सम्मुख नतमस्तक थे, उन्होंने अपनी पुस्तक ''भारत एक खोज'' में भारतीय संस्कृति एवम् उसकी समृद्धि के विषय में वर्णन किया है–

''यदि मुझे भारत की महानतम निधि व सर्वोत्कृष्ट विरासत के विषय में पूछा जाय तो मैं निर्द्वन्द्व रूप से यह कह सकता हूँ कि संस्कृत भाषा और साहित्य उससे सम्बन्धित सारा वाङ्मय एक धरोहर है। जब तक यह रहेगी तब तक भारत की आधारभूत विशिष्टता भी बनी रहेगी। यदि भारतीय जाति वेद, बुद्ध, उपनिषद् तथा महाकाव्यों (रामायण, महाभारत) को भूल जाएगी तो भारत भारत नही रहेगा।''[288]

वर्तमान युग में तथाकथित पाश्चात्य आधुनिकता के प्रवाह में बह कर भारतीय युवा पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक सभ्यता से विमुख होती जा रही है, वहीं दूसरी ओर कृत्रिम भौतिकता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाने पर भी आन्तरिक सुख न मिल पाने के कारण पाश्चात्य संस्कृति भारतीय आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख हो रही है।

पाश्चात्य विद्वान् व इतिहासविद् भारतीय प्राचीनतम संस्कृति से प्रभावित हो, भारतीय सांस्कृतिक समृद्धि से अभिभूत हो उसके अध्ययन में रत है। जैसा कि प्रसिद्ध है सारे विश्व में भ्रमण करने पर भी आध्यात्मिक शांति व सच्चा आनंद भारत माँ के अंक में ही मिलता है, क्योंकि यह संस्कृति त्याग, व ईश्वर भक्ति की अविचल परम्परा है।

वैदिक संस्कृति को विश्व की प्राचीनतम संस्कृति व ज्ञान विज्ञान के उद्गम स्थल के रूप में जाना जाता है। संस्कृत भाषा अर्थात् प्राचीन भारतीय जनमानस व बुद्धिजीवी वर्ग की अभिव्यक्ति का साधन है। कम्प्यूटर के इस युग में व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण रूपेण परिष्कृत भाषा के रूप में

---

[288] '' 'संस्कृत' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, पृ. 1–2

स्वीकार किया जाता है। भाषाविदों के अनुसार ग्रीक, अरबी, लेटिन आदि लगभग समस्त भाषाएँ जो प्राचीन मानी जाती हैं, उनके भी पहले भारतीय संस्कृति व संस्कृत भाषा अपने अस्तित्व में आ चुकी थी। यही भारतीय सभ्यता व भाषागत समृद्धि का प्रतीक है कि वैदिक काल से आज तक वैदिक वाङ्मय व देववाणी संस्कृत हजारों वर्ष पर्यन्त भी जनमानस के अन्तःकरण में समाई हुई है।

सांस्कृतिक धरोहर ही विश्व चेतना का आधार है तथा पतनोन्मुखी विश्व संस्कृति को पुनः समृद्ध करने के लिए वैदिक वाङ्मय ही एक मात्र सशक्त साधन है।

वैश्वीकरण व भूमण्डलीकरण के इस युग में पाश्चात्य आक्रमणों एवम् सम्पर्कों के कारण जो परिवर्तन हमारी जीवन शैली में आया है अथवा अन्य शब्दों में पाश्चात्य विचारधारा व कार्य पद्धतियों को भारतीय जनमानस ने यथावत् अपने ऊपर प्रतिस्थापित कर लिया है। किसी दूसरी संस्कृति के ग्राह्य को ग्रहण करना तो शुभ–सूचक है किन्तु अपने ऊपर यंत्रवत् थोपी जाने वाली अग्राह्य परम्पराओं को भी आत्मसात् करना प्राचीन वैदिक परम्परा के सर्वथा विरूद्ध है और यही कारण है कि हमारी अपनी अक्षम्य त्रुटियों से हमारी परम्पराएँ विलुप्त सी होती जा रही है। जब मनुष्य का मन, उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ ही उसके वश में न होगी तथा अपने विषय को ग्रहण करने में समर्थ न होंगी तब मनुष्य का कर्म सम्पादन भी त्रुटिपूर्ण हो जाएगा।

संसार में उत्कर्ष व पतन दोनों ही मानव की अभिलाषाओं व व्यवहार पर निर्भर होता है। मनुष्य यदि अपने चिन्तन को भौतिक सुखों की ओर प्रवृत्त करता है तो सब कुछ पा कर भी अतृप्त रह कर किसी भी क्षेत्र में वैशिष्ट्य प्राप्त नहीं कर सकता जब तक वह अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं करेगा, अपनी प्राचीन अमूल्य संस्कृति एवम् समृद्धि को आत्मसात् नहीं करेगा तब तक वास्तविक अभ्युदय सम्भव नहीं होगा। मनुष्य का मन जिसका कोई आकार नहीं होता, जो शरीर के एक स्थान पर रहते हुए भी अनेकों योजन तक की यात्रा तय कर लेता है, कभी मनुष्य को

वास्तविकता से दूर कर देता है, तो कभी यथार्थ के धरातल पर ला खड़ा करता है, ऐसा चंचल मन यदि शुभ संकल्पों वाला हो तो किसी भी संस्कृति को समृद्ध होने से कोई नहीं रोक सकता–

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरङ्गम ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।1।।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।2।।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जयोतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।3।।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञस्तायते सत्पहोता तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।4।।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता स्थनाभाविवाराः।

यस्मिन्श्चित्तँ सर्वमोत प्रजानां तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।5।।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु।।6।।[289]

अर्थात् ऐसा मेरा मन जो जागृत अवस्था में दूर चला जाता है, अथवा सुप्तावस्था में पुनः अपने स्थान पर लौट आता है, जो दूरगामी विषयों को प्रकाशित करने वाली इन्द्रियों का एक मात्र प्रकाशक है, अथवा प्रवर्तक है, जो भूत भविष्य व वर्तमान सर्वत्र विचरण करने में समर्थ है, ऐसा मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

शुद्ध व निर्मल मन से ही बुद्धि का सदुपयोग सम्भव है, वैदिक क्रियाओं यथा यज्ञ विधानादि सभी कार्यों के समान ही लौकिक कार्य भी मन के स्फूर्तिवान, शुद्ध व ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा होने पर ही

---

[289] शुक्ल यजु. 34.1–6

भली प्रकार से सम्भव व सम्पन्न होते हैं। मन की प्रसन्नता ही मनुष्य के व्यवहार व चरित्र पर परिलक्षित होती है, खिन्नमना व्यक्ति सरल व मधुर नहीं हो सकता और ऐसा व्यक्ति समाज को समृद्ध करने में अपना योगदान नहीं दे सकता।

मन ही वह आधार है, जिसके स्वस्थ व निर्मल होने पर मनीषी सत्कर्म करते हैं। ऐसे मनीषी जो सत्कर्म परायण हैं, यज्ञ विधानों में दक्ष होते हैं। वहीं मेरा मन जो संकल्पों, विकल्पों से रहित हो आत्मा में ही स्थित है, ऐसा मेरा मन शुभ संकल्पो वाला हो क्योंकि ज्ञान को उत्पन्न करने वाला भी मन है, बुद्धि को सत्कार्यों की ओर प्रेरित करने वाला भी मन है, व्यथित मन बुद्धि को उचित मार्ग पर नहीं ले जा सकता। बुद्धि ही मनुष्य की विशेषता है जो उसे मनुष्येतर प्राणियों से पृथक् करती है। वर्तमान समय में मनुष्य का पशुवत् आचरण उसकी दुर्बुद्धि का ही परिचायक है और दुर्बुद्धि आपके व्यथित मन की प्रतिच्छाया।

ऋषि कहते हैं कि मेरा मन ज्ञान उत्पन्न करने वाला है, धैर्यरूप है, सभी प्राणियों में स्थित हो पदार्थों को प्रकाशित करने वाला है, इन्द्रियों को प्रकाशित करने वाला है, जिस मन की अनुकूलता के बिना कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। अर्थात् मनोनुकूल कार्य कर लेने को व्यक्ति शीघ्र प्रवृत्त हो जाता है, ऐसा मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

वैदिक वाङ्मय में व्यक्तिगत व सामाजिक प्रबन्धन हेतु मन अर्थात् चित्त को उचित दिशा में प्रेरित करने हेतु ईश्वर से प्रार्थना की गई है। मन की अनुमति के अभाव में अथवा अनुकूलता के अभाव में व्यक्ति किसी भी विषय पर ठोस निर्णय लेने में असमर्थ रहता है। कोई भी लौकिक व वैदिक कर्म सम्पन्न करने के लिए व्यक्तियों की स्वयं के प्रयासों से मन को उसी दिशा में प्रेरित करना होगा।

अभ्युदय, उत्थान का मार्ग अनेक कठिनाइयों व परीक्षाओं से युक्त होता है। संघर्ष तथा धैर्य की शिक्षा वेदों से ही प्राप्त होती है। भौतिकवादी युग में हो रहे अनैतिक आचरणों, वासनापूर्ण

व्यवहार तथा रक्त रंजन ये सब मन की चंचलता अथवा अतृप्ति का ही परिणाम है। पतन की ओर अग्रसर संसार रूपी प्रवाह की दिशा परिवर्तित करने के लिए पहले प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्दर के व्यक्ति से परिचित होना होगा। वह मन जिसके निर्मल शुद्ध व पवित्र बनाने पर ही जीवन धारा बदल सकती है।

वैदिक वाङ्मय में वर्णित आत्मा के परिष्कार की सैद्धान्तिक व प्रायोगिक विलक्षणता को अपने जीवन में आत्मसात करना होगा। प्राचीन प्रबन्धकीय मान्यताओं को प्रतिस्थापित करने के लिए भारत के प्रबुद्ध जन ही नहीं अपितु सामान्य जन को भी यह साहस दिखाना होगा।

किसी भी समाज की समृद्धि इस तथ्य पर निर्भर करती है कि वह अपनी पारम्परिक मूल्यों को विस्मृत न करें, अपनी आध्यात्मिक विचारधारा जो उसे इस भौतिकवादी जगत् से ऊपर उठाती है उसे सदैव याद रखे। पाश्चात्य विचारधारा जिसका अंधानुकरण वर्तमान युवा पीढ़ी कर रही है वहाँ नैतिक मूल्यों को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। जीवन के प्रति एक सतही धारणा है कि जहाँ मनुष्य जीवन को मात्र सुख व भोग प्राप्ति का माध्यम माना जाता है। भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार धर्म, अर्थ व काम तीनों पुरूषार्थों का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति ही है।

प्रायः मनुष्य की सारी चर्याएँ सम्पूर्ण जीवन चार पुरूषार्थों में से प्रथम तीन पुरूषार्थों की सिद्धि में ही व्यतीत हो जाता है, मृत्यु जो अवश्यम्भावी है, जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, यह जानते हुए भी व्यक्ति और अधिक धनार्जन, वासनापूर्ति में उन्मत्त होकर अनवरत लगा रहता है।

मनुष्य यह नहीं समझ पा रहा है कि वैदिक कालीन आदर्श, प्रज्ञाचक्षु ऋषियों द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन व चिन्तन द्वारा रचे गये हैं, जिनकी सार्थकता पर आज भी कोई वैज्ञानिक, प्रगतिवादी, इतिहासविद् अथवा कोई अन्य भी संशय नहीं कर सकता है। किन्तु वर्तमान प्रगतिवादी मनुष्य जवीन की लयबद्धता के लिए वर्णित इन भिन्न आदर्शों के मध्य सन्तुलन बनाए रखने में असमर्थ हो रहा है और यही वर्तमान सामाजिक प्रबन्धन की मूलभूत आवश्यकता है।

वैदिक वाङ्मय का पूर्णज्ञान तो शायद सामान्य मनुष्य के वश में नहीं है। इसके लिए तो ईश्वरीय आशीर्वाद की ही आवश्यकता होती है किन्तु विद्वज्जनों द्वारा की गई व्याख्या तथा विश्लेषण के आधार पर साधारण मनुष्य यह तो जान ही सकता है कि भौतिक समृद्धि व सांसारिक सुख वास्तव में तो मात्र सत्य व धर्म का आचरण करने पर ही प्राप्त हो सकते हैं। यह सब जानने व जीवन में आत्मसात् करने के पश्चात् सामाजिक समृद्धि के लिए अन्य कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। व्यक्ति जब स्वयं से संतुष्ट व तृप्त है, ईश्वर में विश्वास व श्रद्धा है, परिवार में प्रसन्नता है और परिवार प्रसन्न है तो कार्य स्थल पर भी उसके प्रसन्न रहने से दिए गए कार्य से सन्तुष्ट होने से वह अधिक स्फूर्ति व ऊर्जा के साथ अपने कार्य को सम्पादन कर सकेगा। यह धारणा सम्प्रति भी प्रबन्ध वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित की जा रही है कि कार्य स्थल पर कर्मचारी से उसकी कार्यक्षमता का पूर्ण दोहन करने के लिए उसे यथासम्भव अनुकूल वातावरण व मनोनुकूल परिस्थितियाँ व कार्य सौपना होगा। अर्थात् मात्र वेतन ही नहीं अपितु मनोवैज्ञानिक वातावरण का निर्माण करना भी कार्यक्षेत्र में आवश्यक है।

कोई भी कार्य ऐसे व्यक्ति को सौपना जिसे उस विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं, उसकी रूचि किसी अन्य कार्य में है अथवा कोई अन्य व्यक्तिगत समस्या उस कर्मचारी के साथ है तो वह परिपूर्णता के साथ उस कार्य को संपादित नहीं कर सकता तथा परिणाम प्रायः नकारात्मक ही प्राप्त होते हैं। वहीं दूसरी ओर वह कार्य जो एक कर्मचारी दक्षता के साथ कर सकता है, जिस कार्य में उस कर्मचारी के मन व मस्तिष्क दोनों का समायोजन हो सके, वह कार्य जिसके संपादन से उस कर्मचारी का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से निखर कर स्थापित हो सके तो ऐसे कार्य के परिणाम सकारात्मक व कार्यक्षमता का पूर्ण दोहन व संगठन के लिए समृद्धिसूचक होते हैं।

यह तथ्य सार्वभौमिक है कि प्रत्येक व्यक्ति उसकी कार्यक्षमताएँ, उसकी रूचि, उसकी चिन्तन शैली उसका कार्यक्षेत्र दूसरे से भिन्न होता है। एक व्यक्ति की सारी चर्याएँ प्रायः दूसरे व्यक्ति से

यथावत् मेल नहीं रखती। कोई कार्य एक व्यक्ति के लिए मनोनुकूल, रूचिकर तथा स्फूर्तिदायक हो तो यह भी हो सकता है कि वही कार्य दूसरे व्यक्ति के लिए नीरस, अनैच्छिक व अरूचिकर हो।

वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि अनेक व्यक्ति अपने कार्यस्थल पर बोझिल व नीरस होते हैं। वे अपने कार्य को बोझ स्वरूप तथा मात्र वेतन प्राप्ति के लिए करते हैं, वहीं दूसरी ओर मनोनुकूल कार्य आवंटित होने पर व्यक्ति पूर्ण दक्षता के साथ तन, मन से अपने कार्य को पूर्ण करने में मग्न हो जाता है और यही तल्लीनता उसे कार्य में सफलता दिलाती है–

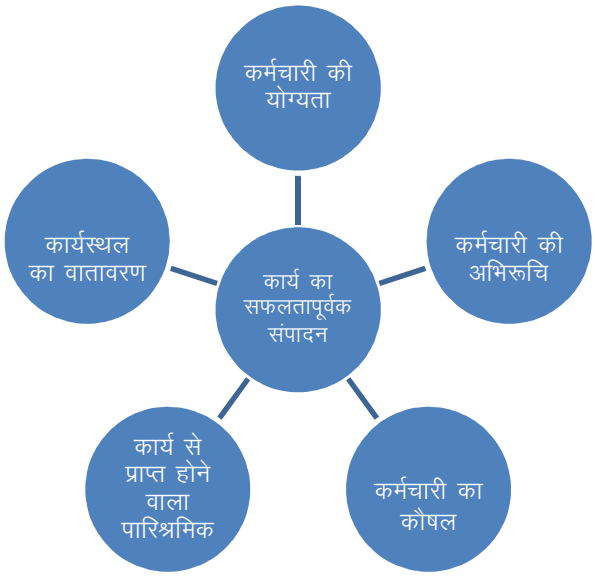

कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादित करवाने के लिए आवश्यक घटकों को उपर्युक्त आलेख (चित्र) द्वारा सरलता से समझा जा सकता है। आधुनिक युग में सफलतापूर्वक लाभांश अर्जित करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने कर्मचारियों को समस्त सुविधाएँ उनके कार्य स्थल पर प्रदान करती है, कर्मचारियों तथा उनके परिवार का भविष्य सुनिश्चित करने हेतु अनेक घोषणाएँ करती हैं तथा साक्षात्कार के माध्यम से योग्य व्यक्ति को ही उसकी रूचि का कार्य आवंटित करती है।

किसी भी कम्पनी, संस्था अथवा राष्ट्र की समृद्धि उसमें कार्य करने वाले व्यक्तियों की मानसिकता व कार्य निष्पादन में उत्पन्न समस्याओं के समाधान के द्वारा संभव है।

किसी भी संस्था के प्रबन्धन में नित नई समस्याएँ सामने आती है। समस्याओं की तह तक जाने पर ही उसका मूल कारण स्पष्ट होता है तथा समाधान हेतु निर्णयन किया जा सकता है। प्रसिद्ध प्रबन्ध वैज्ञानिक पीटर एफ. डकर के अनुसार निर्णयन के पाँच चरण निर्धारित किये हैं।

1. समस्या के विषय में पता लगाना
2. समस्या के मूल में जाकर उसका विश्लेषण करना
3. समस्या निवारण हेतु अन्य वैकल्पिक समाधानों का विकास करना
4. सभी विकल्पों में से समस्या निवारण हेतु सर्वोत्तम विकल्प चयन
5. समस्या विश्लेषण द्वारा प्राप्त सर्वोत्तम विकल्प के निर्णय का प्रभावशाली क्रियान्वयन

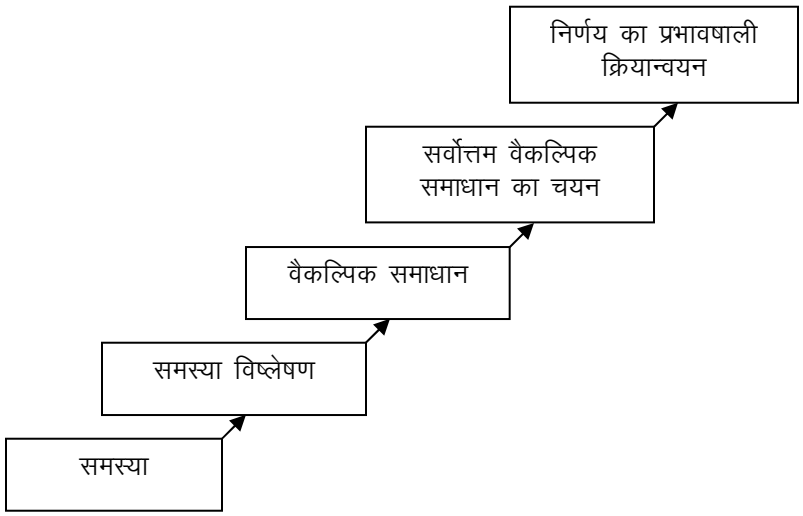

प्रबन्धन के यही सिद्धान्त परिवार जैसी लघु ईकाइ से लगाकर अनेक वैश्विक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। जिस प्रकार एक परिवार में एक छोटी सी समस्या का निवारण न किया जाय, व्यक्ति स्वविवेक से स्वकर्त्तव्य का पालन न करे तो परिवार में विवाद की स्थिति आ सकती है। ठीक उसी प्रकार वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा के आधार पर वर्तमान वैश्विक समस्याओं का समाधान भी कुछ इस तरह किया जा सकता है। प्रसिद्ध प्रबन्ध वैज्ञानिक हेनरी फेयोल के अनुसार प्रशासन व प्रबन्ध में कोई आधारभूत अन्तर नहीं होता है। संगठन का सर्वोच्च एक प्रशासक के समान ही होता है। फेयोल के अनुसार प्रशासन अथवा प्रबन्धन के सिद्धान्त सार्वभौमिक

होते हैं। अतः उन्हें जीवन के किसी भी क्षेत्र में यथा–प्रशासन, व्यवसाय, उद्योग, सेना, शिक्षा, विज्ञान, चिकित्सा, राजनीति, धर्म, समाजसेवा, युद्ध, पर्यावरण प्रबन्धन आदि किसी भी क्षेत्र में प्रयुक्त किया जा सकता है।

किसी भी उपक्रम को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए योजना निर्माण, संगठनात्मकता संसाधन, कार्मिक योग्यता, आदेश, क्रियान्वयन, समन्वय, नियन्त्रण, निर्णयन की आवश्यकता होती है तथा यह भी आवश्यक है कि उच्च पदासीन अधिकारियों का निम्न स्तर के कर्मचारियों से सम्पर्क एक कड़ी के माध्यम से होना चाहिये किन्तु उस कड़ी में संवादहीनता नहीं हानी चाहिये।[290]

उपर्युक्त सभी प्रबन्धकीय सिद्धान्त प्रायोगिक रूप में तभी सफल हो पाएँगे जब प्रत्येक अधिकारी व कर्मचारी अपने कर्त्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करे तथा नैतिक मूल्यों को विस्मृत न करते हुए अपने आवंटित कार्य को पूरी श्रद्धा के साथ करने का प्रयास करे।

वैदिक दर्शन भी स्वकर्त्तव्य के निर्वहन को सर्वाधिक मान्यता देता है, जिसके अनुसार प्रबन्धन मात्र एक चिन्तन प्रक्रिया अथवा दर्शन ही नहीं अपितु एक ऐसी कार्यशैली है जिसका उद्देश्य व्यापक स्तर पर मानवीय हितों का पोषण करना ही है।

भारतीय चिन्तन प्रक्रिया के अनुसार समस्या के मूल कारण को जानकर उसका निराकरण करना चाहिये। वर्तमान समय में स्वविवेक व आत्म चिन्तन की आवश्यकता है। क्या उचित है व क्या अनुचित यह आत्मप्रेरणा से ही व्यक्ति जान सकता है।

न धर्माधर्मौ चरत 'आवं स्व' इति,

न देवगन्धर्वा न पितर इत्याचक्षतेऽयं धर्मोऽमधर्म इति ।

यं त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मो, यगर्हन्ते सोऽधर्मः।।[291]

धर्मसूत्र के विचारों को समीकृत कर मनु ने वैदिक आदेशों के अधीन ही सामाजिक समृद्धि के स्रोत के रूप में लिखा है–

वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्

---

[290] डॉ. सुरेन्द्र कटारिया–''प्रशासनिक सिद्धान्त एवम प्रबन्धन'', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृ 334

[291] अपस्तम्ब धर्मसूत्र 7.7

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।[292]

अर्थात् धर्म व अधर्म हम हैं, हमारा आचरण करो–ऐसा नहीं कहते, न देवता कहते हैं, न गन्धर्व कहते हैं न ही पितर कहते हैं कि यह धर्म है अथवा अधर्म है, किन्तु जिस आचरण की श्रेष्ठ पुरूष प्रशंसा करते हैं वही ग्राह्य धर्म है तथा जिसकी निन्दा करते हैं वही अधर्म है।

मनुष्य को अपने ज्ञान व स्वविवेक द्वारा यह निर्णय करना चाहिये की स्वयं के लिए तथा सामाजिक समृद्धि के लिए किस प्रकार का कार्य उचित है।

किन्तु समय की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि समृद्धि प्राप्ति के उचित मार्ग का ज्ञान होते हुए भी मानव समाज उचित मार्ग का अनुसरण नहीं कर रहा है। वैदिक चिन्तन प्रक्रिया के अनुसार प्रबन्ध के नैतिक पक्षों को प्रतिपादित करना व वैदिक मूल्यों को प्रतिस्थापित करना ही वैदिक संस्कृति व वर्तमान भारतीय सांस्कृतिक प्रबन्धन का विश्व संस्कृति के प्रति महत्त्वपूर्ण योगदान होगा तथा वैश्विक समृद्धि का मार्ग प्रकाशित करेगा।

वैदिक प्रबन्धन – वर्तमान एवं भविष्य दृष्टि

वर्तमान विश्व संस्कृति के सम्मुख अनेक ऐसी समस्याएँ उपस्थित हैं जो बुद्धिजीवी वर्ग को भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ की स्थिति में लाकर खड़ा कर देती है किन्तु विशुद्ध भारतीय प्रबन्धन पद्धति एवम् उसके द्वारा प्रदत्त प्रबन्धन शिक्षाएँ सांस्कृतिक प्रबन्धकीय विशेषताओं एवम् अन्तर्दृष्टि से लाभान्वित होकर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास अवश्य ही सकारात्मक सिद्ध होगा।

सनातन वैदिक संस्कृति के सिद्धान्तों को वैदिक साहित्य के माध्यम से ही ग्रहण करना होगा। गुरू–शिष्य परम्परा के माध्यम से कन्ठस्थीकरण विधि द्वारा सम्प्रति भी सुरक्षित है। भारतीय सांस्कृतिक धरोहर वैदिक संस्कृति की ही देन है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण

---

[292] मनु, 2.6

विशेषता जिसने पश्चिमी देशों के विद्वानों एवम् शोधकर्ताओं को अपनी ओर आकर्षित किया एवम् प्रभावित किया वह प्राचीन भारतीय मेधा द्वारा सभी विषयों चाहे वह जन प्रशासन से सम्बद्ध हो अथवा राज्य व्यवस्था, आध्यात्म से अथवा भौतिकता से सभी का प्रक्रियाबद्ध, सघन अध्ययन व सरल विश्लेषण प्राप्त है। वेदों ने ही अभूतपूर्व भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का अद्यतन मार्गदर्शन व पोषण किया है। वेदोक्त मार्ग का अनुगमन करके ही मनुष्य मात्र को आध्यात्मिक शक्ति व मानसिक शक्ति प्राप्त होती है। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना, विश्वबन्धुत्व की भावना, शान्तिपूर्ण जीवन सम्पन्न सह अस्तित्व हमें वैदिक वाङ्मय में ही प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य अक्षुण्ण ज्ञान के भण्डार है। जहाँ पर हमें विश्व की लगभग सभी कलाएँ, ज्ञान, विद्याएँ यथा संगीत, वास्तुशास्त्र, युद्ध कौशल, ज्योतिष, औषधिशास्त्र (आयुर्वेद), दर्शनशास्त्र, योग, दाशमिक पद्धति, नृत्य की विभिन्न विधाएँ जैसे भरतनाट्यम, कथक आदि सामवेद की ही देन है। अनेक प्राचीन संस्कृतियाँ यथा ग्रीक, रोमन, मिस्त्र आदि भी वैदिक संस्कृति से प्रभावित है। आधुनिक भवन निर्माण कला में वास्तुशास्त्र को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है जिसका उद्गम स्थल प्रायः शूल्व सूत्र को ही स्वीकार किया गया है अर्थात् विश्व संस्कृति में अद्यतन प्राप्त प्रायः सभी कलाओं व विज्ञानों का उद्गम स्थल वेद ही है तथा वैदिक वाङ्मय द्वारा प्रदत्त नैतिक शिक्षाएँ वर्तमान तथा भविष्य की संस्कृति का सुप्रबन्धित व उत्तरोत्तर विकास सम्भव है।

वेद हमें केवल आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग ही नहीं दर्शाते वरन् दैनिक जीवन की विभिन्नताओं का नैतिकता द्वारा निर्वहन सिखाया जाता है।

आज की समस्त ज्वलन्त समस्याओं का समाधान प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राप्त है। आज जब हम महिला सशक्तिकरण एवम् स्वतंत्रता की उद्घोषणा करते हैं तब हम यह भूल जाते हैं कि वैदिक वाङ्मय में शताब्दियों पूर्व महिलाओं को सम्माननीय स्थान प्राप्त था। युग प्रवर्तक आचार्य मनु के अनुसार–

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"

तत्कालीन समाज में नारी को उच्च स्थान प्राप्त था। मातृशक्ति को देवी स्वरूपा माना जाता था तथा उन्हें आदर व सम्मान दिया जाता था। तत्कालीन समाज में महिला उत्पीड़न अथवा शोषण की चर्चा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती।

एक ओर जहाँ वैदिक वाङ्मय शांति, सरलता, वसुधैव कुटुम्बकम्, विश्व बन्धुत्व, ब्रह्मएकात्म आदि की बात करता है वहीं दूसरी ओर अपने स्वाभिमान, आत्मसम्मान, नैतिकता, राष्ट्र रक्षा के लिए युद्ध की विभिन्न तकनिकों का भण्डार है।

अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में विभिन्न प्रकार के आयुधों के विषय में वर्णन प्राप्त है। यू.एस.ए. ने जिन हथियारों का प्रयोग ईराक, कुवैत, अफगानिस्तान के विरूद्ध किया था उनका वर्णन भी वेदों में प्राप्त है। ईराक द्वारा उपयोग में लाई गई "SCUD" व यू.एस.ए. द्वारा उपयोग में लाई गई "PATRIOT" मिसाईल जो आपस में टकराने पर स्वतः ही नष्ट हो जाती थी, उसी प्रकार के अस्त्र का वर्णन रामायण व महाभारत काल में भी मिलता है।

रामायण के सुन्दरकाण्ड में भगवान हनुमान समुद्र के पार उड़कर विभिन्न बाधाओं को पार करते हुए लंका पहुँचते हैं, जो कि हनुमानजी के युद्धकौशल का अनूठा उदाहरण है।

युद्ध की विभिन्न तकनीकें, अस्त्र–शस्त्र निर्माण कला व उनकी प्रयोग विधि, गुप्तचर तंत्र, कारागार निर्माण, सेना में नेतृत्व व अनुशासन व्यवस्था आदि का तत्कालीन सैन्य प्रबन्धन के अनुसार वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक काल में आर्य राष्ट्र रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहूति भी दे देते थे।

ऋग्वेद का इन्द्र सूक्त इस तथ्य का समर्थन करता है। यहाँ इन्द्र के पुरूषार्थ, असुरों का विनाश तथा लोकहित में किये गये कार्यों का प्रतिबिम्ब झलकता है–

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् यः। जातः। एव प्रथम मनस्वान्।

देवो देवान्क्रतुंना पर्यभूषत् देवः देवान् क्रतुना परिऽभूषत्।।

यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां यस्य शुष्मात् रोदसी इति अभ्यसेताम्।

नृम्णस्य मह्नाः स जनास इन्द्रः।।

नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृं हद् यः पृथिवीम व्यथमानाम् श्रदृं हत्।

यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् यः पर्वतान् प्रऽकुपितान् अरम्णात्।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यः अन्तरिक्षम् विऽममे वरीयः।

यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ।। यः द्याम् अस्तभ्नात् सः जनास सः इन्द्रः

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून् यः हत्वा अहिम् अरिणात् सप्त सिंधून्।

यो गा उदाजदपधावलस्य यः गा उत्आजत् अप्ऽधा वलस्य।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान यः अश्मनोः अन्तः अग्निमाजजान।

संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ।। सम्ऽवृक समत्ऽसु सः जनासः इन्द्रः।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि येन। इमा विश्वा च्यवना कृतानि।

यो दास वर्णमधरं गुहाकः यः दासम् वर्णम् अधरम् गुहा अकरित्यकः।

श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमादद् श्वघ्नीऽइव यः जिगीवान लक्षम् आदत्।

अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ।। अर्यः पुष्टानि सः जनास इन्द्रः।।

यं स्मा पृच्छन्ति कुहसेतिघोरम्यम् स्म पृच्छन्ति कुह सः इति घोरम्।

उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् उत ईभ् आहुः न एषः अस्ति इति एनम्।

सो अर्यः पुष्टीर्विजइवामिनातिसः अर्यः पुष्टीः विजःऽइव आ मिनाति।

श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ।। श्रत् अस्मै धत्त सः जनासः इन्द्रः।।

यो रघ्रस्य चोदिता यः कृशस्य यः रघ्रस्य चोदिता यः कृशस्य।

यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः यः ब्रह्मणः नाधमानस्य कीरेः।

युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः युक्तऽग्राव्णः यः अविता सुऽशिप्रः

सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ।। सुतऽसोमस्यः सः जनासः इन्द्रः।।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य अश्वासः प्रऽदिशि यस्य गावः।

यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः। यस्य ग्रामाः यस्य विश्वे रथासः।

यः सूर्य य उषसं जजान यः सूर्यम यः उषसम् जजान।

यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ।। यः अपाम् नेता सः जनासः इन्द्रः।।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते यम् क्रन्दसी इति संयतीइति समऽयती।

विह्वयेते इति विऽह्वयेते।

परेऽवर उभया अमित्रा परे अवरे उभयाः अमित्राः।

समानं चिद्रथमातस्थिवांसा समानम् चित् रथम् आतस्थिऽवांसा।

नाना हवेते जनास इन्द्रः ।। नाना हवेते इति सः जनासः इन्द्रः।।

यस्मान्न ऋतेविजयन्तेजनासो यस्मात् न ऋते विऽजयन्ते जनासः।

यं युध्यमाना अवसे हवन्ते। यम् युध्यमानाः अवसे हवन्ते।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यः विश्वस्य प्रतिऽमानम् वभूव।

यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ।। यः अच्युतऽच्युत् सः जनासः इन्द्रः ।।

यः शश्वतो मह्येनो दधानान् यः शश्वतः महि एनः वर्धानान्।

अमन्यमानाञ्छर्वा जघान अमन्यमानान् शर्वा जघान।

यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यः शर्धते न अनुऽददाति शृघ्याम्।

यो दस्योर्हुन्तास जनास इन्द्रः ।। यः दस्योः हन्ता सः जनासः इन्द्रः।।

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं यः शम्बरम् पर्वतेषु क्षियन्तम।

चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् चत्वारिंश्याम् शरदिं अनुऽअविन्दत्।

ओजायमानं यो अहिं जघान ओजायमानम् यः अहिम् जघान्।

दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ।। दानुम् शयानम् सः जनासः इन्द्रः।।

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् यः सप्तऽरश्मिः वृषभः तुविष्मान्।

अवासृजत्सर्तवि सप्त सिन्धून् अवऽअसृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्।

यो रौहिणमस्फरद्वज्रबाहुर यः रौहिणम् अस्फुरत् वज्त्रऽबाहुः।

द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः द्याम् आऽरोहन्तम् सः जनासः इन्द्रः।।

द्यावा चिदस्मै पृथिवीनमेते द्यावा चित् अस्मै पृथिवी इति नमेतेइति।

शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते शुष्मात् चित् अस्य पर्वताः भयन्ते।

यः सोमपा निचितो वज्त्रबाहुर यः सोमऽपाः निऽचितः वज्त्रऽबाहुः।

यो वज्त्रहस्तः स जनास इन्द्रः ।। यः वज्त्रऽहस्तः सः जनासः इन्द्रः।।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः सुन्वन्तम् अवति यः पचन्तम्।

यः शंसन्तं यंः शशमानमूती यः शसन्तम् यः शशमानम् ऊती।।

यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्य ब्रह्म वर्धनम् यस्य सोमः।

यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः यस्य इदम् राधः सः जनासः इन्द्रः।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् यः। सुन्वते पचते दुघ्रः आ चिद्।

वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः वाजम् दर्दर्षि सः किल असि सत्यः।

वयं त इन्द्र विश्वहं प्रियासः वयम् ते इन्द्र विश्वह प्रियासः

सुवीरासो विदथमा वंदेम । सुऽवीरासः विदथम् आ वदेम।।

अर्थात् इन्द्र इतने तेजस्वी हैं जिन्होंने उत्पन्न होते ही मनस्वी तथा प्रमुख देवताओं को प्रज्ञा से विभूषित कर दिया, जिसने काँपती हुई पृथिवी को स्थिर किया, जिसने विशाल अन्तरिक्ष को पार कर लिया। अपार शक्तियों के स्वामी इन्द्र ने मेघरूपी चट्टानों के मध्य विद्युत को उत्पन्न किया, वह पर्वतों को भी हिला सकने की शक्ति रखते हैं। इन्द्र दुर्बलों के पोषक भी हैं, इन्द्र सभी वीरों के आराध्य हैं, उनके आशीर्वाद के अभाव में कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता, इन्द्र दुर्जनों को अपने अस्त्र वज्र से मारते हैं। इन्द्र को 'वज्रबाहु' संबोधन दिया गया है। इन्द्र को अन्न प्रदान करने वाले, राष्ट्र की रक्षा करने वाले तथा वीरों के आश्रयदाता के रूप में वर्णित किया गया है।

वर्तमान मनुष्य वैज्ञानिक उन्नति का दुरूपयोग नरसंहार के लिए कर रहा है जो वैदिक वाङ्मय द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं के सर्वथा विरूद्ध है।

शूल्व सूत्र तथा कल्प सूत्र में प्राप्त वैदिक गणित से सम्बन्धित गणितीय उपकरण (Instrument) पुरातात्विक खोजों के पश्चात् 2500 B.C. में सिन्धु घाटी सभ्यता में प्राप्त हुए हैं। इन्हीं उपकरणों को बाद में ''पायथागोरियन–थियोरियम'' कहा जाने लगा। वर्तमान समय में भी वैदिक गणित एक अलग विषय के रूप में विद्यार्थियों को सिखाया जाता है। भविष्य में भी यह गणितीय ज्ञान ब्रह्माण्ड के विभिन्न रहस्यों का रहस्योद्घाटन करने में वैज्ञानिकों की सहायता करेगा व विश्व संस्कृति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

वैदिक गणित के पश्चात् 'आर्यभट्ट' ने लगभग पाँचवी शताब्दी में ''अल्जेबरा''(बीजगणित) पद्धति का रहस्योदघाटन किया। ज्योतिष व खगोल शास्त्र का विकास भी वैदिकयुगीन वरदान है। आर्यभट्ट ने यह सिद्ध किया कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है। वर्तमान वैज्ञानिक इस तथ्य से आश्चर्य चकित हैं कि जिस तथ्य को सिद्ध करने में अनेकानेक वर्षों तक अनुसंधान करना पड़ा उसकी खोज भारतीय मेधा ने अनेक वर्ष पूर्व ही कर ली थी। आज भी हमारे वैदिक साहित्य के अक्षुण्ण ज्ञान के भण्डार भविष्य के वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए ब्रह्माण्ड के रहस्यों का पता लगाने में

सहायक सिद्ध होंगे तथा भविष्य में वैज्ञानिकों का पथ प्रदर्शन करेंगे। भास्कराचार्य ने ग्रहों की संचरण व्यवस्था और उनके भ्रमण पथ के विषय में तथ्यात्मक जानकारी दी व सही सिद्ध किया। न्यूटन की थ्योरी से पूर्व हमारे भारत में गुरूत्वाकर्षण सिद्धान्त की खोज हो चुकी थी और भविष्य में भी वैज्ञानिक अनुसंधान हेतु प्रेरणा स्रोत के रूप में हमें नवीन शोध करने के लिए नए द्वार खोलेगा।

वर्तमान में शल्य चिकित्सा एक विशेष चिकित्सा पद्धति के रूप में परिपक्वता को प्राप्त कर चुकी है। शल्य चिकित्सा पद्धति में अंगों के प्रत्यारोपण के लिए जो पद्धति अपनाते हैं उसका विकास 600 ई.पू. में सुश्रुत कर चुके हैं। सुश्रुत के सिद्धान्त आधुनिक चिकित्सकों को आश्चर्यचकित् कर देते हैं और भविष्य में भी चिकित्सकीय पद्धति को नए आयाम देंगे। अगर प्राचीन आख्यानों की सत्यता पर विश्वास करें तो भगवान श्रीगणेश का जन्म भी एक प्रकार से आधुनिक क्लोन का ही एक रूप है। प्राचीन कथा के अनुसार जब भगवान शंकर के हाथों गणेशजी का सिर धड़ से अलग कर दिया गया था तब उन्होंने एक हाथी के बच्चे का सिर उनके धड़ पर लगाकर उन्हें नवजीवन प्रदान किया यह मात्र किंवदंती ही नहीं अपितु शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में एक चमत्कार ही है। इस तरह के अनेक उदाहरण भारतीय साहित्य में देखने को मिलते हैं।

चिकित्सा विज्ञान का यह विस्तार मूलतः शु. यजु. के उन्नीसवे अध्याय में प्राप्त है। जहाँ इन्द्र, अश्विनौ एवम् सरस्वती द्वारा सम्पादित चिकित्सा विषयक कार्यों का वर्णन है–

तदस्य रूपमृतम् शचीभिस्तिस्त्रो दधुर्देवताः सा ँ्रराणाः।

लोमानि राष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य मा ँसमभवन्न लाजाः।।

तदश्विना भिषजा रूद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम्।

अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतोगवां त्वचि।।

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः।

रसं परिस्त्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम।।

पयसा शुक्रममृतं जनित्रम् सुरया मूत्राज्जनयन्त्ररेतः।

अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊर्वध्यं वातम्सब्बं तदारात्।।

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान।

यकृत् क्लोमानं वरूणो भिषज्यन्मतस्ने वायव्यैर्नभिनाति पित्तम्।।

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सदुधा न धेनुः।

श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शची भिरासन्दी नाभिरूदरं न माता।।

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभि र्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः।

प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः।।

मुखम् सदस्य शिर इत्सतेन जिव्हा पवित्रमश्विनासन् सरस्वती।

चप्यं न वायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी।।

अश्विभ्यां चक्षुस्मृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन।

पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरूतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते।।

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम्।

सारस्वत्युप वा कै व्यान् नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान्।।

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याम् श्रत्रममृतं ग्रहाभ्याम्।

यवा न बर्हिर्भ्रुवि के सराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारधं मुखात्।।

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रुणि न व्याघ्रलोम।

केशा न शीर्षन्यशसे श्रिये शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रयाणि।।[293]

शरीर विज्ञान की आन्तरिक सूक्ष्मताओं का विस्तृत वर्णन वर्तमान युवा चिकित्सा विज्ञानियों के लिए अत्यन्त आश्चर्य का विषय है।

---

[293] शु. यजु. 19.81–93

ऐसे अनेक रोग जिसका निदान आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिक नहीं खोज पाए उन्हें वैदिक वाङ्मय में खोजा जा सकता है। पीलिया और हृदय रोग के सम्बन्ध में आयुर्वेद में स्पष्ट उल्लेख है–

अनुसूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमाचते।

गो रोहितस्य वर्णेण तेन त्वा परिदध्मसि।।[294]

सामान्यतः 'गो' शब्द का प्रयोग गाय के लिए किया जाता है। यास्क अपने निरूक्त में कहते हैं–

''सर्वेऽपि रश्मयः गाव उच्यते'' [295]

यह जानकर आश्चर्य होता है कि आधुनिक मनुष्य प्रकृति के साथ इतना खिलवाड़ करने पर भी जल के महत्त्व को पूरी तरह नहीं समझ पाया, वहीं जल के औषधीय गुणों से वैदिकयुगीन मुनि पूर्णतः परिचित थे। जल मात्र क्षुधा पूर्ति के लिए ही नहीं अपितु जल चिकित्सा के रूप में भी प्रयुक्त होता था। जल को देवता का स्थान दिया गया था तथा उसके गुणों से उसके महत्त्व से वैदिक कालीन ऋषि भली तरह परिचित थे।

अथर्ववेद संहिता में (1.62) में कहा गया है–

''अप्सु मे सोमी अब्रवीत अन्तर्विश्वानि भेषजा''

प्रत्येक रोग के लिए जल ही सर्वोत्तम औषधि होती थी। शरीर के विभिन्न अंगों की रक्षा जल ही करता है। आधुनिक चिकित्सक भी डायरिया, सर्दी, पथरी, ज्वर आदि में जल को ही सर्वोत्तम औषधी कहते हैं। 'सलाइन' चढ़ा कर रोगी को कई रोगों से मुक्त करते हैं। अनेक जलीय वनस्पतियाँ भी औषधियों के रूप में प्रयुक्त होती है। भविष्य में भी वैज्ञानिक जल की महत्ता को समझते हुए जल शुद्धिकरण करके उसे मानवता के लिए उपयोगी सिद्ध करने की खोज में व्यस्त है।

---

[294] अथर्व 1.5.22

[295] सांइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी इन वेदास एण्ड शास्त्रास, पृ. 234

शु. यजु. में राजसूय याग के प्रसङ्ग में भावी राजा को अनेक प्रकार के जलों से अभिषेक करने की क्रिया में उसे निरोगी, बुद्धिसम्पन्न एवम् मानसिक प्रबुद्धता के लिए मन्त्रों का विनियोग है।

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नू र्जस्वती राजस्वश्चितानाः।

याभिर्मित्रावरूणावभ्यषिञ्चन्या भिरिन्द्रमनयन्नत्यारातीः।।[296]

चिकित्सा विज्ञान, गणित आदि के अतिरिक्त भी वेदों में अन्य कलाओं व प्रबन्धन के विविध आयामों के विषय में भी पर्याप्त मार्गदर्शन प्राप्त होता है। ''समय प्रबन्धन'' वर्तमान की ज्वलंत समस्या है। नवीन पीढ़ी का प्रत्येक क्षण महत्त्वपूर्ण है, समय की बचत के उद्देश्य से मानव श्रम के स्थान पर मशीनों का आविष्कार बढ़ता जा रहा है ताकि मानव एक क्षण का सदुपयोग करते हुए सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति कर सके। जेट विमान तीव्र गति से दौड़ने वाली रेल गाड़ियाँ, तेज गति की बाइकें, कारें, गृहणियों के उपयोग हेतु वेक्यूम क्लिनर, वॉशिंग मशीन इत्यादि दूरी को कम तथा समय की बचत कर रही है।

वैदिक काल में समय प्रबन्धन कला का पूर्ण विकास हो चुका था। तत्कालीन मानव की जीवनचर्या व्यवस्थित थी। प्रत्येक काल के लिए समय निर्धारित था। समय की इकाई का पूर्ण ज्ञान था–लव, निमेश, नादिका, मुहुर्त, यमम्, अहनि, पक्ष, मास, अयन आदि अनेक इकाइयाँ निर्धारित थीं।

वर्तमान युग में होने वाले आविष्कार भी समय पर ही आधारित हैं। वैज्ञानिक नासा प्रयोगशाला में बैठकर मंगलग्रह, चन्द्रमा आदि स्थानों पर निर्धारित समय पर अपने यान तत्–तत् स्थानों पर उतारते हैं, निमिष मात्र भी देरी नहीं होती है। यह सब सुव्यवस्थित समय प्रबन्धन की सफलता है। भविष्य में भी हमारी यह प्रबन्धन कला और अधिक विकसित होकर मार्गदर्शन करेगी।

---

[296] शु. यजु. 10.1

उत्तरोत्तर उन्नति करता वह वृक्ष सदैव अपनी जड़ों के द्वारा अपनी मातृभूमि से जुड़ा रहता है ठीक उसी प्रकार हम अपने सांस्कृतिक विरासत से जुड़ कर ही, वेद रूपी अमूल्य निधि से प्रेरित होकर ही सफलता की ऊँचाइयों को स्पर्श कर सकते हैं।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ने गुरूत्वाकर्षण की खोज लगभग 17वीं शताब्दी में की थी। किन्तु भारतीय वैज्ञानिक बुद्धि इस तथ्य की खोज कहीं पहले ही कर चुकी थी। खगोलविद् वराहमिहिर इस बात को सिद्ध कर चुके थे कि ब्रह्माण्ड के प्रत्येक ग्रह एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। सूर्य के चहूँ ओर अपनी–अपनी निश्चित परिधि में अनवरत विचरण करते हैं। पञ्चसिद्धान्तिका में वराहमिहिर इस बात को सिद्ध कर चुके हैं–

पञ्चमहाभूतमयस्तारागण पञ्जरे महीगोलः।

खेऽयस्कान्तस्थो लोह इवाऽवस्थितो वृत्तः।।[297]

भास्कराचार्य ने भी 12वीं शताब्दी में सिद्धान्त शिरोमणी भुवन कोषम् (19–6) में कहा है–

आकृष्टि शक्तिश्च मही यत् खस्थं गुरू स्वभिमुखं स्वशक्तया।

आकृष्येत तत्पततीव भाति समे समन्तात क्वपतव्ययंखे।''

हमारे वैज्ञानिकों की भविष्य की खोज में भी वैदिक साहित्य उपयोगी सिद्ध होगा।

वर्तमान सामाजिक परिवेश में स्त्री शिक्षा प्रबन्धन के विषय में भी विचार करने की आवश्यकता है।

वैदिक संस्कृति में महिलाओं को समाज में सम्माननीय स्थान प्राप्त था। उनका जीवन स्तर नैतिक और आध्यात्मिक मानक स्तर पर निर्धारित था।

समाज को महिलाओं का दिशा–निर्देश प्राप्त था। यही कारण था कि गृहस्थाश्रम सुनियोजित मार्ग पर अग्रसर था। स्त्री शक्ति लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, काली और सुभद्रा के रूप में प्रतिष्ठापित

---

[297] सांइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी इन वेदास एण्ड शास्त्रास,

थी। मनुस्मृति के अनुसार जिस गृह में नारी की स्थिति सम्माननीय है, वह गृह सुखशान्ति का आगार है और जहाँ महिलाओं का अनादर किया जाता है वह गृह शापित है। मनुस्मृति के अनुसार–

''जो व्यक्ति स्वयं का मंगल चाहता है उसे समय–समय पर अपनी गृहस्वामिनी को आभूषण वस्त्र व उत्तम भोजन भेंट करना चाहिये।''[298]

ऋग्वेद (5–61–6) के अनुसार स्त्री का सम्मान ही गृह ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र को प्रगति के शिखर पर स्थापित करता है। वैदिक संस्कृति में महिलाओं को 'ऋषि' पद प्राप्त था। तत्कालीन महिला ऋषिकाएँ वैदिक ऋचाओं के संकलन में संलग्न थीं। वैदिक ऋचाओं को सस्वर पाठ कर अनेकशः समाज में वैदिक ज्ञान का प्रचार व प्रसार करती थी। ऋग्वेद में लगभग 126 ऋचाएँ विदुषियों द्वारा प्रणीत की गई थी। रोमाशा, लोपमुद्रा, विश्ववरा, शाश्वती, गार्गी, मैत्रेयी, अपला, अदिति, आदि के नाम विशेष रूप से उल्लिखित हैं। विद्वानों का कथन है कि इन्द्र देवता को इन विदुषियों ने ब्राह्मण का ज्ञान दिया। ये विदुषियाँ ब्रह्मवादिनी उपाधि से प्रसिद्ध थीं।

वैदिकयुगीन इतिहास में महिलाओं को सनातन धर्म को अक्षुण्ण रखने का सम्मान दिया गया है। सनातन धर्म का पालन वैदिक युग से महिलाएँ पूरी निष्ठा के साथ अनवरत रूप से करती आ रही है।

वर्तमान समाज में बाह्य आक्रमणों ने महिलाओं की स्थिति को परिवर्तित कर दिया। महिलाओं का दमन किया जाने लगा। उनकी वैचारिक स्वतन्त्रता व शिक्षा–दिक्षा प्रायः नगण्य हो गई। समाज के नैतिक व आध्यात्मिक पतन की ओर अग्रसर होने का एक मुख्य कारण यह भी है। ''मातृवत् परदारेषु'' का सिद्धान्त क्षीण हो गया। महिलाओं की स्थिति भोग्या की हो गई।

---

[298] मनु. 3.55.59

वर्तमान काल में वैधानिक रूप से स्त्री व पुरूष को समान अधिकार प्राप्त हैं। स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। महिलाएँ सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हैं और भारत के स्वर्णिम अतीत के गौरव को पुनः प्रतिष्ठापित कर रहीं हैं।

किन्तु बृहद परिप्रेक्ष्य से अध्ययन किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि इस पुरूष प्रधान समाज में स्त्री की स्थिति आज भी उतनी ही दयनीय है जैसी मध्य युग में बाह्य आक्रमणों के समय हो गई थी। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर बहुत कम महिलाएँ ही अपने अस्तित्व को स्थापित कर पाती है, अन्यथा उसे शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी समाज में अनेक प्रकार की प्रताड़नाओं को सहन करना होता है। स्त्री जाति को इस अवर्णनीय स्थिति से उबारने के लिए समस्त स्त्री जाति को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज को एक जुट होकर प्रयास करने होंगे। जिस प्रकार आधुनिक काल में ''Ladies first'' का नारा दिया जाता है उसी प्रकार प्राचीन काल में भी यह परम्परा प्रचलित थी। राधा–कृष्ण, सीता–राम, उमा–महेश, लक्ष्मी–विष्णु इत्यादि।

स्त्री शिक्षा के समान ही जनसंख्या वृद्धि भी एक ज्वलंत समस्या है जो सामाजिक प्रबन्धन को प्रभावित करती है। देश में आर्थिक अपराधों की वृद्धि, दीन–हीन गृह व्यवस्था, व्यस्तता और स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं व तनाव को जन्म देने वाली जनसंख्या वृद्धि ही है। विद्वानों का कथन है कि द्रुत गति से बढ़ने वाली जनसंख्या प्रतिवर्ष एक आस्ट्रेलिया महाद्वीप को जन्म देती है। वैदिक युग जनसंख्या वृद्धि का पक्षधर नहीं था। तत्कालीन मानव मेधा का कथन था कि संयम तथा ब्रह्मचर्य से मानव इस समस्या से सुरक्षित रह सकता है। परिवार में संतति संख्या अत्यधिक नहीं होने से दम्पत्तियों को अधिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता है। ऋग्वेद का कथन है–

''बहु प्रजा निर्ऋतमा विवेश''

अर्थात् अधिक संतान से व्यक्ति काठिन्य में फँस जाता है।

सामाजिक प्रगति के लिए मातृत्व शक्ति का विकास आवश्यक है। चाहे वह प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रसंग हो। वर्तमान में स्त्री की स्थिति हो अथवा भविष्य में महिला सशक्तिकरण का मुद्दा हो सर्वत्र जीवन के आधार का निर्माण करने वाली माँ ही है। वह अपनी माता के गर्भ में रहकर नवजीवन ग्रहण करती है और गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर समयानुकूल अवस्था में एक नये जीव को जन्म देती है।

वैदिक युग में प्रकृति को माता, पृथिवी को भी माता कहा गया है क्योंकि यदि हम अपनी माता की रक्षा करते हैं तो माँ पृथिवी की रक्षा करना भी हमारा धर्म है।

वैदिककालीन गृह प्रबन्धन व्यवस्था में परिवार में एक पति–पत्नी अथवा माता–पिता का सम्बन्ध तथाकथित ''लाईफ पार्टनर'' का ही नहीं था अपितु वह अपने पति की धर्म पत्नी होती थी, सहचरी होती थी, अर्द्धांगिनी होती थी। वह समय पर अपने पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए उसे धर्म, सदाचार और कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाती है।

वैदिक वाङ्मय में गृहस्थ धर्म, पति के कर्त्तव्य, पत्नी के कर्त्तव्य, माता–पिता के कर्त्तव्य, संतान के कर्त्तव्य आदि का सुव्यवस्थित व विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। किस प्रकार की जीवन शैली से परिवार प्रेमपूर्वक सुख व शान्ति से आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो सकता है यह समझने के लिए तथा वर्तमान विघटनात्मक परिस्थितियों से मुक्ति पाने के लिए अपनी प्राचीन धरोहर को पुनः आत्मसात करना होगा।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनंतकाल से मार्गदर्शन देने वाला वैदिक वाङ्मय वर्तमान व भविष्य में भी प्रबन्धन की दृष्टि से विभिन्न आयामों पर पर्याप्त कलेवर समाहित किये हुए हैं।

वर्तमान में बहुप्रचलित वाक्कला अर्थात ''communication skills'' पर भी वेदों में विशेष ध्यान दिया गया है। ''संवाद प्रबन्धन'' के विषय में वेदों में अनेक शिक्षाएँ दी गई है। वर्तमान युग में ''स्पीच थेरेपी'' द्वारा युवा पीढ़ी को वार्तालाप कला का ज्ञान दिया जाता है किन्तु वैदिक वाङ्मय के

अनुसार यह कला बालकों को तभी से सिखाना आरम्भ कर दी जानी चाहिये जब वह बोलना सीखता है। शुद्ध उच्चारण, शान्त स्वर में वार्तालाप करना आदि शिक्षाएँ वेदों में दी गई है। ऊँचे स्वर में अभद्र वार्तालाप को वेदों में निषिद्ध बताया गया है।

''वाचेम शतम् ह्रदे''

बाल्यावस्था से ही बच्चों को क्रोध पर नियन्त्रण रखने की शिक्षा दी जाती है। शील, सदाचार और मधुर भाषण सर्वोत्तम गुण थे और अद्यतन भी है।

तत्कालीन समाज में वर्णभेद नहीं था। एक राजा का बालक व सामान्य बालक समानरूप से आश्रमों में शिक्षा ग्रहण करते थे। भगवान श्रीकृष्ण व सुदामा का उदाहरण यहाँ प्रासंगिक है। बालक की वार्तालाप कला घर से ही प्रारम्भ होती थी। प्रसिद्ध है कि जिस प्रकार चन्द्रमा रात्रि में शीतलता प्रदान करता है उसी प्रकार मधुर वाणी से विद्वान् ज्ञानी व विवेकशील बनकर सभा में अपनी उपस्थिति देना चाहिये।

''चन्द्रमा नकत येति'' (ऋग्वेद)

अच्छाइयाँ व बुराइयाँ हर युग में व्याप्त होती है। आधुनिक समय में ही नहीं प्राचीन काल में भी व्यसनों को अंधकार के गर्त में जाने का मार्ग दर्शाया गया है। व्यसनदोष, स्वभावदोष, एवम् चरित्र दोष इन तीनों प्रकार के दोषों को ''त्रित'' कहा गया है। आत्मसाधना द्वारा इन तीनों प्रकार के दोषों से दूर रहकर व्यक्ति आत्म कल्याण कर सकता है।

प्राचीन काल में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए अनेक उपायों का भी वर्णन किया गया है। तत्कालीन समाज में नैतिकता इतने उच्च स्तर पर पहुँच चुकी थी, उसमें बुराइयों का दमन कर सकने की पर्याप्त क्षमता थी। वर्तमान समय में बुराइयाँ मानव मस्तिष्क पर इतनी गहराई से समा चुकी है कि वर्तमान संस्कृति में इतनी संभावनाएँ सम्भवतः नहीं है जो मानव सभ्यता के परिष्कार के

लिए आवश्यक है। इस हेतु हमें प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक प्रबन्धन की ओर ही प्रकाश किरण दिखलाई देती है।

आधुनिक मनुष्य के स्वभाव से धैर्य दिन प्रतिदिन लुप्त होता जा रहा है। आत्मोन्नति व शान्त जीवन के लिए धैर्य अत्यधिक आवश्यक है। ऋग्वेद कहता है– **'मित्रं मे सहः'**। धैर्य मानव मात्र का मित्र है। काठिन्य क्षणों में धैर्य ही मानव जीवन को आश्रय देता है। धैर्य को ही मनुष्य का आभूषण माना गया है। धैर्य की सहायता से ही मनुष्य अपना विवेक धारण करते हुए सही निर्णय ले सकता है।

अपशिष्ट प्रबन्धन (कचरा प्रबन्धन) – अपने चारो ओर के वातावरण को स्वच्छ तथा सुनियोजित रखने के लिए प्रयास करना भी नैतिकता के अन्तर्गत आता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी ओर से कर्त्तव्यपरायण होकर अपने पर्यावरण के समुचित प्रबन्धन के लिए प्रयास करने का प्रण ले तो यह धरती पुनः हरी–भरी व स्वस्थ हो जाएगी। अपने पर्यावरण की सुरक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का नैतिक कर्त्तव्य है।

वैदिक युग में अपशिष्ट पदार्थ एक ज्वलंत समस्या नहीं थी। जलवायु उत्तम थी। जनसंख्या अल्प थी। वर्तमान युग के समान सीमेन्टेड सड़कें व भवन नहीं थे। कच्ची भूमि होने से घर व बारिश का पानी धरती द्वारा सोख लिया जाता था। वैदिक काल में पर्यावरणीय स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता था।

वर्तमान युग में भी सरकार तथा अनेक संस्थाएँ औद्योगिक कचरे को विभिन्न प्रकारों से परिवर्तित कर के उसे पुनः उपयोगी बनाने का प्रयास कर रही है। विकासशील देशों में इलेक्ट्रानिक कचरा तथा चिकित्सा उत्पादकों के कबाड़ ने एक जटिल समस्या को जन्म दिया है। यह कचरा स्वतः नष्ट नहीं होता। पृथ्वी पर कार्बन–डाइ–आक्साइड का खतरा बढ़ता जा रहा है। इस जहरीले कचरे का पुनश्चक्रण करने के प्रयोग वैज्ञानिकों द्वारा किये जा रहे हैं। अकेले भारत में ही लगभग

चार लाख टन इलेक्ट्रानिक कचरा निकलता है। कम्प्यूटर, फेक्स मशीन, मोबाइल फोन, टी.वी., वीसीआर, रेड़ियो, ट्रांज़िस्टर, प्लास्टिक खिलौने आदि अनेकानेक सामान कचरे का रूप ग्रहण कर चुके हैं। 'ई' कचरे के लिए लायसेन्स प्राप्त करने वाली प्रथम कम्पनी का संयंत्र रूड़की में स्थापित किया जा चुका है। भारतीय सीमेन्ट उद्योग राख, प्लाइंग एश, वैश्विक इस्पात उद्योग, कागज उद्योग, गुजरात आदि समुद्र तटीय क्षेत्रों में स्थित पानी के जहाजों का कबाड़ आदि के पुनश्चक्रण की प्रक्रिया प्रारम्भिक रूप ले चुकी है। वर्तमान में यह कचरा एक संसाधन का रूप ले चुका है। सरकार ही नहीं आज प्रत्येक देशवासी को इस कार्य हेतु अपने नैतिक उत्तरदायित्व को समझकर आगे आना होगा तथा इस प्रक्रिया को स्वच्छ एवं आधुनिक परिचालन में बदलना होगा।

पर्यटन प्रबन्धन– पर्यटन की अवधारणा वैदिक युग से चली आ रही है। प्राचीन समय में की जाने वाली धार्मिक यात्राएँ पर्यटन प्रबन्धन का ही स्वरूप थी। जन समुदाय उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक धार्मिक स्वरूप देकर यात्राएँ करता था। आवागमन के साधन नहीं थे, हवाई यात्रा भी सम्भव नहीं थी, किन्तु प्रकृति से अपने प्रेम, आकर्षण व नवीन प्राकृतिक रहस्यों की खोज के चलते मनुष्य यात्राएँ करने के लिए अपने जीवन को भी न्यौछावर करते थे।

भारतीय संस्कृति तथा पर्यावरणीय सौन्दर्य सदैव विदेशी पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। शिक्षा क्षेत्र में भी भारतीय शिक्षा पद्धति इतनी उच्च कोटि की थी कि विदेश से विद्यार्थी नालंदा विश्वविद्यालय जो कि अब तक हुई पुरातात्विक खोजों के अनुसार सर्वाधिक प्राचीन विश्वविद्यालय है, उच्च शिक्षा ग्रहण करने हेतु सुदूर क्षेत्रों से विद्यार्थी यहाँ आते थे। चीनी यात्री ह्वेन सांग ज्ञानार्जन करने तथा भारतीय संस्कृति को समझने के उद्देश्य से भारत आया था। देश के लिए यह पर्यटन आय का साधन न होकर एक सांस्कृतिक परिचय का आधार था।

वर्तमान युग में पर्यटन का क्षेत्र अत्यन्त बृहद् है। यह मनोरंजन का एक साधन भी है। आधुनिक युग में पर्वतारोही दल,सांस्कृतिक दल, वैज्ञानिकों का दल, राजनैतिक संगठन, आर्थिक

संगठन आदि के कई दल एक देश से दूसरे देश भ्रमणार्थ आते हैं। सभी देश परस्पर उन्नति के लिए एक दूसरे की संस्कृतियों के सकारात्मक पक्षों का अध्ययन करते हैं।

प्राप्त विवरणों के अनुसार सन् 2003 से 2008 तक भारत में अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों की संख्या को हम निम्न तालिका द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।–

तालिका

भारत में अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों की संख्या का प्रतिशत[299]

सन्	प्रतिशत
2003	40%
2004	60%
2005	65%
2006	70%
2007	75%
2008	80%

पर्यटन के विभिन्न क्षेत्रों व उद्देश्यों के अनुरूप निम्न मुख्य आधारों पर विभाजित किया जा सकता है।

तालिका

पर्यटन के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध तालिका

क्रमांक	क्षेत्र
1	धार्मिक पर्यटन
2	साहित्यिक पर्यटन
3	साहसिक पर्यटन
4	ग्रामीण पर्यटन
5	आदिवासीय पर्यटन
6	मनोरंजन हेतु पर्यटन
7	प्राकृतिक पर्यटन
8	परम्परागत औषधियों के विकास हेतु पर्यटन

[299] स्रोत– साहित्य विश्लेषण, जर्नल्स एवम् संङ्गणक के आधार पर संकलित एवं विकसित

भारत में पर्यटन प्रबन्धन की अपार सम्भावनाएँ हैं। इसके लिए पर्यटन मंत्रालय स्थापित है जिसका कार्य देश में पर्यटकों के लिए सभी प्रकार की सुविधाएँ जुटाना है। महानगरों में पांच सितारा होटलें हैं जो पर्यटकों को सम्पूर्ण सुविधाएँ देता है। नगरों में राज्य पर्यटन निगम अपने पर्यटकों को देश व राज्यों के प्रसिद्ध ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवम् राजनैतिक स्थलों को देखने की सुविधा प्रदान करता है। पर्यटकों के लिए बसें, कार टेक्सियाँ, हवाईजहाजों, जलयानों आदि की सुविधा प्रदान की जाती है। खेलों के लिए आए हुए क्रीड़ादल भी इस पर्यटन का लाभ लेते हैं।

विदेशों से आने वाले पर्यटकों की सुविधा के लिए प्रबन्धकों को प्रशिक्षित किया जाता है। भाषागत कठिनाई न हो इसलिए विदेशी भाषा (फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश, अरेबियन आदि) पथप्रदर्शकों(गाइडों) को सिखलाई जाती है ताकि वे विदेशी पर्यटकों को भारतीय सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरोहरों से परिचित करवा सके। पर्यटन से विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि होती है। भारत भी इस क्षेत्र में तीव्र गति से प्रगति की ओर अग्रसर है तथा रोजगार के भी अनेक अवसर युवा भारत को उपलब्ध करवा रहा है।

27 सितम्बर को विश्व पर्यटन दिवस के रूप में मनाते हैं। गोवा, उड़ीसा, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, बिहार, कश्मीर आदि ऐसे स्थल हैं जो पर्यटन के उद्देश्य से दर्शनीय हैं।

भारत के इस पर्यटन प्रबन्धन के उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त व्यवसाय सिर्फ तभी सफलता को प्राप्त कर सकता है जब प्रत्येक भारतीय अपने क्षेत्र में पधारे पर्यटकों को समुचित सत्कार दे, उनके समक्ष अपनी संस्कृति की सकारात्मक तस्वीर प्रस्तुत करें, अपने देश व शहर को स्वच्छ बनाए रखें। भद्र आचरण करें तथा समस्त नैतिक मूल्यों का पालन करें।

वैदिक कालीन प्रबन्धकीय शिक्षा में अतिथि को सर्वोच्च महत्त्व दिया गया है। उनका पर्याप्त आदर सत्कार कर उन्हें सन्तुष्ट करना ही प्राचीन भारतीय संस्कृति है।

शिक्षा प्रबन्धन– वैदिक काल से ही भारत विश्व गुरू रहा है। शिक्षा का क्षेत्र वैदिक काल में अति व्यापक था। चिकित्सा गणित तथा आध्यात्मिक ज्ञान चरमोत्कर्ष पर था। शून्य का आविष्कार भारत में ही हुआ है। वेदों में प्राप्त गणितीय संख्याएँ इस बात की प्रतीक है कि उस समय हम सम विषम संख्याएँ तथा दाशमिक प्रणाली के प्रणेता थे।

सुश्रुत, चरक तथा धन्वन्तरि आज भी चिकित्सा क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं। वेदों में शल्य क्रिया का वर्णन भी प्राप्त होता है। बाबा रामदेव वेदों पर आधारित आरोग्य शिक्षा के आधार पर आधुनिक समय में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर रहे हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में भारतीय मनीषियों का वर्चस्व रहा है। देश–विदेशों में विद्वत्जन ज्ञानार्जन हेतु भारत की यात्रा करते थे। यहाँ की संस्कृति के प्रति गहराई से ज्ञान प्राप्ति हेतु रूचि लेते थे और औत्सुक्य एवं आश्चर्य से अभिभूत हो अपने देश में भारतीय संस्कृति का प्रचार करने का ध्येय लेकर भारत से बिदा लेते थे।

तत्समय शिक्षा मात्र अर्थोपार्जन का माध्यम नहीं थी। गुरूकुल में अनुशासनबद्ध होकर ब्रह्मचर्य नियम का पालन करते हुए शिक्षा दान स्वरूप में ही दी जाती थी। राजा और प्रजा दोनों ही श्रेणी के बालकों को समान शिक्षा, समान दण्ड एवं समान पुरस्कार का नियम गुरूकुल में निर्धारित था।

विश्व विद्यालयीन शिक्षा के लिए भारत विश्व विश्रुत था। नालन्दा में प्राप्त खण्डहर इस बिन्दु को सार्थक करते हैं। तक्षशिला में वैश्विक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों का आगमन होता था। मोहन–जो–दड़ो भी भारतीय संस्कृति की धरोहर को अपने आप में समेटे हुए है। जावा, सुमात्रा, श्रीलंका, मलेशिया आदि में भारतीय शिक्षा एवं संस्कृति के अवशेष प्राप्त होते हैं।

यदि हम वर्तमान समय के शिक्षा क्षेत्र पर दृष्टिपात करें तो उसमें आमूल चूल परिवर्तन हो चुका है। शिक्षा के विषय परिवर्तित हो चुके हैं। विज्ञान एवं नैनो टेक्नोलाजी जैसे विषम अध्येता के रूचिकर अंग बन चुके हैं।

भारतीय छात्र विदेशों में जाकर अध्ययनरत हैं, उन्हें वहाँ शिक्षा के पश्चात् रोजगार के अवसर प्राप्त हैं। धनोपार्जन उनका लक्ष्य रह गया है।

भारत में भी विदेशों से अनेकों छात्र आकर एम.बी.ए., एम. टेक, बायोटेक्नॉलाजी आदि अनेक विषय की शिक्षा ग्रहण करने आते हैं।

शासकीय महाविद्यालयों के अतिरिक्त अशासकीय महाविद्यालय की रचना की जा रही है। मेनचेस्टर को शिक्षा की नगरी कहा जाता है। भारत में भी नोएड़ा, गाजियाबाद तथा कानपुर शिक्षा के बड़े केन्द्र बनते जा रहे हैं।

प्रबन्धन संस्थान (I.I.M.) की संख्या भी वृद्धि को प्राप्त है। वहाँ के छात्रों की नियुक्तियाँ विदेशों में मोटे वेतन पर होती है। उनमें से कई छात्र अपने देश को त्याग कर विदेशों में जाना नहीं चाहते हैं। यहाँ के अध्यापकों को उच्च वेतन प्रदान करने की चर्चा चल रही है।

वर्तमान मानव संसाधन मंत्री माननीय कपिल सिब्बल भी उच्च शिक्षा में परिवर्तन लाना चाहते हैं। भानु मेहता और देवेश कपूर का कथन है कि भारत में शिक्षा की असमानता है। समाचार पत्रों के आँकड़े बतलाते हैं कि भारत सरकार शिक्षा पर लगभग 4.3 अरब डॉलर खर्च कर रही है। भारतीय नागरिक विदेशी विश्वविद्यालयों को लगभग 3.5 अरब डॉलर का भुगतान कर रहे हैं।

विद्वानों का कथन है कि यदि अपने देश में ही भारतीय छात्रों को अच्छे शिक्षण प्राप्त हो और समान अवसर प्राप्त हों तो विदेशी मुद्रा की बचत होगी और शिक्षा की गुणवत्ता भी बढ़ेगी।

अतः उपर्युक्त अध्ययन एवम् विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि वैदिक कालीन प्रबन्धन व्यवस्था अनादिकाल से जीवन के विविधतापूर्ण क्षेत्रों को समान महत्व के साथ स्पर्श करती रही है। तत्कालीन संस्कार एवम् व्यवस्था अद्यतन उसी स्वर्णिम आभा के साथ प्रकाशमान है।

वैदिक प्रबन्धकीय सिद्धान्त, नियमितता, नैतिकता, ईश्वरीय सत्ता में विश्वास वर्तमान एवं भविष्य दृष्टि से मानव समाज के उत्थान के लिए सदैव उपयोगी थे तथा सदैव अपनी उपादेयता सिद्ध करते रहेंगे।